

श्री सद्गुरुवेनमः

आपा पौ आपहि बँध्यो

जैसे स्वान काँच मंदिर में भरमति भूँकि मरो ॥
जो केहरि बपु निरखि कूप-जल प्रतिमा देखि परो ।
ऐसेहिं मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि लरो ॥
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर-घर नटत फिरो ।
कहै कबीर नलनी कै सुगना तोहि कौन पकरो ॥

—सतगुरु मधु परमहंस जी

साहिब



बन्दगी

सन्त आश्रम रांजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला साम्बा (जे. एण्ड के .)

आपा पौ आपहि बँध्यो
—सतगुरु मधुपरमहंस जी

प्रचार अधिकारी

— राम रतन, जम्मू

© SANT ASHRAM RANJRI (J & K)

ALL RIGHTS RESERVED

First Edition	—	May, 2011
Copies	—	5000

Website Address.

www.sahibbandgi.org

www.sahib-bandgi.org

E-Mail Address.

*satgurusahib@sahibbandgi.org

Editor

Sahib Bandgi Sant Ashram Ranjri

Post -Raya, Distt.-Samba (J & K)

Ph. (01923) 242695, 242602

1. जीवरा अंश पुरुष का आहीं	5
2. जो जीव बिछुड़े साहिब से	9
3. चल चकवी वा देश में	12
3. शरीर में आत्मा की पहचान	14
4. सात सुरति का सकल पसारा	17
5. सबमें आत्म रूप पछान	24
6. पलट वजूद में अजब विश्राम है	35
7. आपा खोवे आपको चीहने	41
8. आपा पौ आपहि बँध्यौ	46
9. बिन सतगुरु नर फिरत भुलाना	80
10. गुरु में देय समाय	89
11. कैसे होगा आत्म साक्षात्कार	103
12. साहिब की वाणी	110



दो शब्द

जो सत्य-पुरुष के अंकुरी जीव हैं वे सत्यगुरु की शिक्षा सुनकर ऐसे दौड़कर मिलते हैं जैसे लोहे से चुम्बक चिपट जाता है और जो काल-पुरुष के जीव हैं उन पर सत्य-पथ की शिक्षा का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। विडम्बना यही है जीव साहिब से बिछुड़ कर काल की दुनिया में अनेक कष्ट सहते हुए भी बार-बार काल-पुरुष के जाल में उलझ रहे हैं और पुनः साहिब से मिलने का प्रयत्न नहीं कर रहे। सब गफलत की नींद में सो रहे हैं। साहिब चेता रहे हैं—

कबीर सोकर क्या करे, उठ और उठकर जाग।

जिनके संग से बिछुड़ा, वा ही के संग लाग ॥

हे जीव, जिस साहिब रूपी प्रियतम से बिछुड़ गया है, उसी की भक्ति कर।

तुमको बिसर गई सुध घर की, महिमा अपन जनाई हो ॥

निरंकार निर्गुण है माया, तुम को नाच नचाई हो ॥

चर्म दृष्टि का कुलफा देके, चौरासी भरमाई हो ॥

हे हंसा! तुम्हें अपने सही घर की सुध भूल गयी है। तुम अपने महिमा को नहीं जानते हो, अपनी ताकत को नहीं समझते हो। जो निर्गुण है, निराकार है, वो सब माया है; वो तुम्हें नाना नाच नचा रही है। तुम्हें भौतिक आँखों की परेशानी देकर, माया में लुभाकर चौरासी की धारा में भरमा दिया है।



जीवरा अंश पुरुष का आही

एक बार धर्मदास जी ने अमर-लोक तथा सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में जानने की इच्छा से कबीर साहिब से प्रार्थना करते हुए पूछा - अब साहिब मोहि देउ बताई। अमर-लोक सो कहां रहाई ॥ कौन द्वीप हंस को वासा। कौन द्वीप पुरुष रह वासा ॥ तीन लोक उत्पत्ति भाखो। वर्णहुसकल गोय जनि राखो ॥ काल-निरंजन किस विधि भयऊ। कैसे षोडश सुत निर्मयऊ ॥ कैसे चार खानि बिस्तारी। कैसे जीव कालवश डारी ॥ त्रय देवा कौन विधि भयऊ। कैसे महि आकाश निर्मयऊ ॥ चन्द्र सूर्य कहु कैसे भयऊ। कैसे तारागण सब ठयऊ ॥ किस विधि भई शरीर की रचना। भाषो साहिब उत्पत्ति बचना ॥

हे सहिब ! कृपा करके अब मुझे बताओ कि वह अमर-लोक कहाँ है ? उस अमर-लोक में जीव किस स्थान पर रहते हैं ? तीन लोक की उत्पत्ति कैसे हुई ? काल-पुरुष कैसे हुआ ? सोलह पुत्र कैसे बने ? यह निर्मल आत्मा चार खानियों में कैसे गयी ? आत्माएँ काल-पुरुष के चंगुल में कैसे फंस गयीं ? त्रिदेव कैसे बने ? पृथ्वी और आकाश कैसे बने ? शरीर की रचना कैसे हुई ? हे साहिब ! कृपा करके मुझे सृष्टि की उत्पत्ति का सारा भेद समझाकर कहिए। तब धर्मदास को अधिकारी जानकर कबीर साहिब ने फरमाया-

तब की बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महि पाताल अकाशा ॥

जब नहीं कूर्म बराह और शेषा। जब नहीं शारद गोरि गणेश।
जब नहीं हते निरंजन राया। जिन जीवन कह बांधि झुलाया ॥
तैतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताऊं काहीं ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया ॥
तब सब रहे पुरुष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं ॥

हे धर्मदास! मैं तब की बात कह रहा हूँ, जब धरती और आकाश नहीं थे; जब कूर्म, शेष, बाराह, शारद, गोरी, गणेश आदि कोई भी न था; जब जीवों को कष्ट देने वाला निरंजन भी न था; जब 33 करोड़ देवता भी न थे... और अधिक क्या बताऊँ ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश न थे। वेद, शास्त्र, पुराण आदि भी न थे। लेकिन वह एक था।

कबीर साहिब कहते हैं कि प्रारम्भ में सत्य-पुरुष गुप्त थे। उनका कोई साथी-संगी नहीं था। वे कभी बने नहीं हैं और न ही मिटेंगे।

जिस किसी वस्तु का सृजन होता है, वह अन्ततः नष्ट भी अवश्य हो जाती है। लेकिन जो परम-पुरुष कभी बना ही नहीं, वह मिट कैसे सकता है! साहिब धर्मदास से कहते हैं कि साकार, निराकार, लोक-लोकान्तर आदि सब बाद में बने; अतः गवाही किसकी दूँ! चारों वेद भी सत्य-पुरुष की कहानियाँ नहीं जानते और निराकार अर्थात् काल-पुरुष तक की बात ही कहते हैं।

धरती, आकाश, ब्रह्माण्ड, निरंजन, त्रिदेव आदि की उत्पत्ति के विषय में बताते हुए साहिब फरमाते हैं कि सर्वप्रथम परम-पुरुष ने इच्छा करके एक शब्द पुकारा, जिससे एक अद्भुत श्वेत रंग का प्रकाश हुआ और वह अद्भुत प्रकाश अनन्त में फैल गया। वह प्रकाश सांसारिक प्रकाश की भाँति न था; वह इतना अद्भुत था की जिसका एक-2 कण करोड़ों सूर्यों को भी लज्जा दे।

जब वह प्रकाश अनन्त में फैल गया तो फिर वे परम-पुरुष स्वयं उस प्रकाश में समा गये। अब वह प्रकाश चेतन हो गया, जीवित हो गया। जिस प्रकार आत्मा के शरीर में आने से शरीर चेतन हो जाता है। उसी

तरह वह प्रकाश भी जीवित हो उठा।

प्रकाश में आने से पहले वे परम-पुरुष अगम थे, गुप्त थे जबकि प्रकाश में आकर ही वे सत्य-पुरुष कहलाए और वह अद्भुत प्रकाश, जो स्वयं सत्य-पुरुष ही थे, अमर-लोक कहलाया।

अभी भी सत्य-पुरुष अकेले ही थे। फिर उनकी मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश को अर्थात् अपने ही स्वरूप को अपने में से छिटका दिया। अनन्त बिन्दुएँ हुईं, जो वापिस उस अद्भुत अनन्त प्रकाश में आईं। जिस प्रकार समुद्र में से पानी को मुट्ठी में या हाथों में भरकर उछालने से कई कण बिखर जाते हैं, उसी तरह उस प्रकाश में से भी अनेक कण बिखर गये। लेकिन जिस प्रकार समुद्र की बूँदें पुनः समुद्र में गिर, समुद्र का ही रूप हो जाती हैं, उसी तरह वे अनन्त कण भी वापिस उस अद्भुत प्रकाश में आए; लेकिन अचरज यह था कि वे बिन्दुएँ जब वापिस प्रकाश में आयीं तो वे प्रकाशमय नहीं हुईं, क्योंकि सत्य-पुरुष ने इच्छा की कि इनका अपना अलग अस्तित्व भी रह जाए। वे ही जीव (आत्माएं) कहलाये। वे सब जीव उसी अद्भुत प्रकाश में विचरण करने लगे।

आत्माओं का उस प्रकाश में अलग अस्तित्व के साथ विचरण करना बड़े अचरज की बात थी क्योंकि समुद्र की बूँदों का समुद्र में अपना अलग अस्तित्व नहीं होता। जिस तरह पानी में मछली घूमती रहती है, उसी तरह सब जीव उस प्रकाश में घूमने लगे। ये देख परम-पुरुष बड़े खुश हुए और उन आत्माओं से बहुत प्यार करने लगे। बहुत समय ऐसे व्यतीत हो गया और सभी जीव उस अद्भुत प्रकाश में विचरण करते हुए परम-आनन्द लूट रहे थे। 'सदा आनन्द होत है वा घर, कबहु न होत उदासा।'

वहाँ उस अमर-लोक में आत्मा का प्रकाश 16 सूर्य का है और परम-पुरुष के मात्र एक रोम का प्रकाश ही करोड़ों सूर्य तथा चन्द्रमा को लजा देने वाला है। अतः जब परम-पुरुष के एक रोम की ऐसी महिमा है तो फिर वह परम-पुरुष स्वयं कैसा होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

फिर परम-पुरुष ने शब्दों से पुत्र उत्पन्न किये अर्थात् जो बोलते जा रहे थे, वह पुत्र बन रहा था। जैसे ही परम-पुरुष ने इच्छा करके दूसरा शब्द पुकारा तो 'कूर्म' उत्पन्न हुआ। इसी तरह तीसरे शब्द से 'ज्ञान' और चौथे शब्द से 'विवेक' उत्पन्न हुआ।

परम-पुरुष ने सोचा कि मैं जो बोल रहा हूँ, वह सब पैदा हो रहा है, तो क्यों न एक अपने जैसा भी बना दूँ! अतः इस बार परम-पुरुष ने एक और परम-पुरुष बनाने की इच्छा से तीव्र आवाज़ में शब्द पुकारा। यह शब्द परम-पुरुष ने थोड़ी संशय में पुकारा। इस शब्द से 'मन' (निरंजन) हुआ। परम-पुरुष तब यह जानने के लिए कि क्या उनके द्वारा उत्पन्न पाँचवां शब्द पुत्र उनके जैसा ही है या नहीं, उस समय परम-पुरुष खुद पाँचवे पुत्र में समाए। परम-पुरुष को एक क्षण के लिए शंका आई कि यह तो मेरा शरीर नहीं है और अपने को वहाँ से खींचकर अपने शरीर में लाए। फिर परम-पुरुष ने छठा शब्द पुकारा तो उससे 'सहज' की उत्पत्ति हुई। सातवें शब्द से 'संतोष', आठवें से 'चेतना', नौवें से 'आनन्द', दसवें से 'क्षमा', ग्यारहवें से 'निष्काम', बारहवें से 'जलरंगी', तेहरवें से 'अचिन्त' चौदहवें से 'प्रेम', पन्द्रहवें से 'दीन-दयाल', तथा सोलहवें शब्द से 'धैर्य', उत्पन्न हुआ। उस अमर-लोक की शोभा को बढ़ाने के लिए ही परम-पुरुष ने इन शब्द पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सभी उसी अमर-लोक में विचरण करने लगे।

ये सब परम-पुरुष के शब्द पुत्र थे, जिन्हें परम-पुरुष ने इच्छा से पैदा किया, लेकिन आत्मा इच्छा से नहीं बनी। आत्मा तो परम-पुरुष का ही अंश है। इस तथ्य को कबीर साहिब ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—

जीवरा अंश पुरुष का आही।
आदि अन्त कोउ जानत नाही॥



जो जीव बिछुड़े साहिब से

जीवों को उस अमर-लोक में विचरण करते हुए बहुत समय बीत गया। उसके पश्चात् पाँचवां पुत्र 'निरंजन' ध्यान करने लगा। उसने 70 युग तक एकाग्रचित होकर परम-पुरुष का ध्यान किया। परम-पुरुष सेवा से प्रसन्न हुए और पूछा कि इतना घोर तप क्यों कर रहे हो? निरंजन ने कहा कि मुझे भी कहीं थोड़ा सा स्थान दे दो। परम-पुरुष ने तब निरंजन को मानसरोवर स्थान दिया (मानसरोवर अमर-लोक का ही एक द्वीप है)। मानसरोवर पहुँच कर निरंजन बड़ा खुश हुआ और आनन्द से वहाँ रहने लगा। लेकिन कुछ ही समय बाद पुनः परम-पुरुष का ध्यान करने लगा। निरंजन ने पुनः 70 युग तक परम-पुरुष का ध्यान किया। परम-पुरुष ने सेवा से प्रसन्न होकर पूछा कि अब क्या चाहते हो?

निरंजन—

इतना ठाँव न मोहि सुहाई।

अब मोहि बकसि देहहु ठकुराई॥

कै मोहि देहु लोक अधिकारा।

कै मोहि देहु देश इक न्यारा॥

निरंजन ने कहा — “मैं इतने से खुश नहीं हूँ। अब कृपा करके या तो इस अमर-लोक का राज्य ही मुझे दे दो या फिर एक अलग से न्यारा देश दो, जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो, जहाँ मैं स्वतन्त्र रूप से बिना किसी रोक-टोक के अपना कार्य कर सकूँ।”

परम-पुरुष ने तब निरंजन से कहा कि तुम्हारे बड़े भाई कूर्म के

पास पाँच तत्त्व का बीज (जो सूक्ष्म रूप में था) है। तुम उसके पास जाकर प्रार्थना करना और पाँच तत्त्व का बीज ले लेना। उससे तुम शून्य में तीन-लोक बनाना। जाओ! तुम्हें 17 चौकड़ी असंख्य युग का राज्य देता हूँ।

निरंजन कूर्म जी के पास पहुँचा, लेकिन कूर्म जी से प्रार्थना नहीं की, और बल से पाँच तत्त्व का बीज उसी प्रकार उनसे छीन लिया, जैसे किसी के शरीर से खून खींचकर निकालते हैं। कूर्म जी शांत थे, उन्होंने सोचा कि यह कौन शैतान यहाँ आ गया है! कूर्म जी ने तब परम-पुरुष से पुकार की, कहा — यह किस शैतान को यहाँ भेज दिया है! इसने तो मेरे साथ बल का प्रयोग करके पाँच तत्त्व का बीज छीना है। परम-पुरुष ने कूर्म जी से कहा कि तुम शांत रहो, यह तुम्हारा छोटा भाई है, इसे माफ़ कर दो। लेकिन परम-पुरुष ने सोचा कि यह कैसा निरंजन उत्पन्न हुआ है!

पाँच तत्त्व का बीज लेकर निरंजन ने उससे पाँच तत्त्व (जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश) बनाए। जिस तरह कुम्हार मिट्टी से तरह-2 की वस्तुएं बनाता है, उसी तरह निरंजन ने भी इन पाँच तत्त्वों से 49 करोड़ योजन पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे, सप्त-पाताल, सप्त-लोक, सब बना दिया। ऐसे शून्य में कई दिन रहा, लेकिन जीव नहीं थे, इसलिए यह निर्जीव सृष्टि थी। निरंजन ने सोचा कि यदि जीव ही नहीं है तो फिर सृष्टि का क्या लाभ! अतः उसने पुनः 64 युग तक परम-पुरुष का ध्यान किया। परम-पुरुष ने पूछा कि अब क्या चाहिए ?

निरंजन —

दीजै खेत बीज निज सारा।।

निरंजन ने कहा — “मैंने तीन-लोक की रचना तो की है, लेकिन जीव ही नहीं हैं तो राज्य किस पर करूँ! इसलिए कृपा करके थोड़े से जीव मुझे भी दे दें, ताकि मैं उन पर राज्य कर सकूँ।”

परम-पुरुष ने तब इच्छा करके ऐसी कन्या (आद्य-शक्ति) की

उत्पत्ति की, जिसकी आठ भुजाएँ थीं। आद्य-शक्ति ने परम-पुरुष को प्रणाम करते हुए पुछा कि उसे क्यों बनाया गया है ? परम-पुरुष ने अनन्त आत्माएँ देते हुए कहा कि हे पुत्री ! मानसरोवर में निरंजन है, जिसने शून्य में तीन-लोक की रचना की है। तुम ये आत्माएँ लेकर उसके पास जाओ और दोनों मिलकर शून्य में सत्य-सृष्टि करो (आत्माओं को योनियों में न लाकर अर्थात् शरीरों में न डालकर सत्य-सृष्टि करने की आज्ञा दी, जैसी कि अमर-लोक की सृष्टि थी)।

यहीं पर जीवात्माएँ अपने साहिब से बिछुड़ गयीं। निरंजन ने फिर आद्य-शक्ति को भी बलपूर्वक अपने साथ रख लिया और सत्य-पुरुष की आज्ञा का उलंघन करते हुए उसने सत्य-सृष्टि के बजाय शरीर-सृष्टि की और जीवों को अनेकानेक कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया। जीवों का सारा आनन्द लुट गया।

बासुरि सुख ना रैणि सुख, नाँ सुपिनै माहिं ।
कबीर बिछुड़ा साहिब सूँ, ना सुख धूप न छाहिं ॥

साहिब कह रहे हैं—

चकवी बिछुड़ी रैणि की, आई मिली परभाति ।
जे जन बिछुड़े साहिब सूँ, ते दिन मिले न राति ॥

साहिब कह रहे हैं कि चकवी (एक पक्षी, जो रात को अपने प्रियतम से बिछुड़ जाती है) चाहे रात्रि में अपने प्रियतम से बिछुड़ जाती है, पर प्रातः होते ही पुनः मिल जाती है अर्थात् उसका कष्ट थोड़ी देर का होता है, पर जीवात्माएं अपने साहिब से बिछुड़ कर पुनः मिल नहीं पा रही हैं, उन्हें निरन्तर कष्ट सहने पड़ रहे हैं।



चल चकवी वा देश में

चकवी बिछुड़ी साँझ की, आन मिलै परभात ।
जो जिव बिछुरे साहिब से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥

साहिब कह रहे हैं कि चकवी (एक खास तरह का पक्षी, जो रात के समय अपने प्रियतम से बिछड़ जाता है और सुबह होने पर ही मिल पाता है) तो शाम के समय बिछुड़कर सुबह फिर अपने प्रियतम से मिल जाती है, पर जो जीव साहिब से बिछड़ गये हैं, वे न दिन को उससे मिल पाते हैं, न रात को ।

साहिब से बिछड़े हुए जीवों को लगातार भवसागर के दुख सहने पड़ रहे हैं । उन्हें इस संसार में तृप्ति नहीं मिल रही है, क्योंकि वे अपने प्रियतम से बिछड़ गये हैं । इसलिए साहिब जगाकर कह रहे हैं—

साँझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा रोय ।
चल चकवी वा देस को, जहाँ रैन न होय ॥

दिन के बीत जाने पर, शाम हो जाने पर चकवी रोना शुरू हो जाती है, क्योंकि प्रियतम से बिछुड़ना पड़ जाता है । इस तरह मन-माया रूपी अँधकार के कारण जीव अपने साहिब से मिल नहीं पा रहा है । साहिब जीव रूपी चकवी को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे चकवी ! उस देश में चल, जहाँ रैन ही नहीं है, जहाँ मन-माया नहीं हैं । फिर बिछुड़ना कैसा !

उस अमर-लोक में मन ही नहीं है, माया ही नहीं है, इसलिए बार-बार आना नहीं है । वहाँ साहिब से सदा के लिए मिलन है; फिर बिछुड़ना नहीं है । वहाँ आनन्द-ही-आनन्द है । साहिब धर्मदास से कह

रहे हैं—

धर्मनि वा देस हमारो बास, जहँ हंसा करै बिलासा ॥
 सात सुन्न के ऊपर साहिब, सेतै सेत निवासा ।
 सदा अनंद रहै वा देसा, कबहुँ न लगै उदासा ॥
 सूरज चंद दिवस नहिं रजनी, नाहीं धरति अकासा ।
 ऐसा अमर लोक है अवधू, केवला फरै बारामासा ॥
 ब्रह्मा विष्णु महेसुर कहिये, छके जोति के पासा ।
 चौधा लोक बसे जम चौधा, ये सब काल तमासा ॥
 उहाँ के गये बहुरि ना अइहौ, आवागमन भय नासा ।
 ब्रह्म अखण्डित साहिब कहिये, आपु में आपु प्रगासा ॥
 कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छाँड़ो खल कै आसा ।
 अमृत भोजन हंसा पावै, बैठि पुरुष के पासा ॥



बावन अक्षर में संसारा, निःअक्षर सो लोक पसारा ।
 खण्ड ब्रह्माण्ड पार के पारा, तहवाँ समर्थ को घर संसारा ॥
 सोई नाम है अक्षर वासा, काया से बाहर प्रकाशा ॥
 सत्यलोक अमर है धामा, तहँवा पुरुष निःअक्षर नामा ॥
 तीन लोक हँस उड़ाना, चौथे लोक हँस स्थाना ॥

शरीर में आत्मा की पहचान

अगर शरीर के अन्दर आत्मा के अस्तित्व को किसी भी तरह अनुभव किया जा सकता है, तो वो है—ध्यान। इसी ध्यान को सुरति भी कहते हैं। इसका मतलब है कि हमारी आत्मा सुरति है। हम देखते हैं कि बिना सुरति के कोई भी काम नहीं हो सकता है। दुनिया का छोटे-से-छोटा काम भी करना हो तो ध्यान की ज़रूरत पड़ती है। अगर चिंतन करें तो दुनिया का हरेक काम सुरति से हो रहा है। तो यह एक मुख्य चीज है। यह आत्मा का नज़दीकी रूप है। जैसे मक्खन घी का करीबी रूप है, इस तरह ध्यान आत्मा का बहुत नज़दीकी रूप है। जितने भी मत-मतान्तर हैं, पहला सिद्धांत है—ध्यान। सभी ध्यान करना बोल रहे हैं।

ध्यान ही वेद शास्त्र कहत हैं, ध्यान ही संत बखाना ॥

साहिब इसी को सुरति के रूप में इंगित कर रहे हैं। यह सुरति, यह ध्यान बड़ी खास चीज़ है। ध्यान एक एनर्जि है। चलना है तो ध्यान चाहिए, बात करनी है तो भी ध्यान चाहिए, सुनना है तो भी ध्यान चाहिए, देखना हो तो भी ध्यान चाहिए। ध्यान कहीं चला जाए तो आँख खुली रहने पर भी कुछ नहीं देख पायेंगे।

हम कहीं सत्संग में जाते हैं, वहाँ ध्यान से गुरु जी के, महात्मा जी के प्रवचन सुनते हैं। यदि हमारा ध्यान घर या कहीं और चला जाए तो हम गुरु जी को, महात्मा जी को देख भी नहीं पायेंगे.....चाहे वे हमारे सामने हों, क्योंकि हमारा ध्यान वहाँ से हट, दूसरी जगह पहुँच गया। फिर उनके प्रवचन सुन भी नहीं पायेंगे और समझ भी नहीं पायेंगे, क्या बोला।

ध्यान से ही यह सब सम्भव था। जब ध्यान ही हट गया तो कुछ भी नहीं रहा। इसका मतलब है, ध्यान में, सुरति में देखने की ताकत भी है, सुनने की ताकत भी और समझने की भी। इसमें बड़ी ताकत है। सारा खेल ही सुरति का है।

सुरति में रच्यो संसारा। सुरति का है खेल सारा ॥

इसका मतलब है कि हमारा ध्यान सक्षम है, हमारे ध्यान के अन्दर योग्यता है। यह ध्यान बड़ी खास चीज है। यह कुछ आइटम है। यह एक स्पन्दन है। इसे देखा जा सकता है। इसे अनुभव किया जा सकता है। जब यह शरीर से चला जाता है तो भी महसूस किया जा सकता है। हम कहते भी हैं कि इसका ध्यान कहीं चला गया है। रेलवे वाले कह रहे हैं—

सावधानी हटी दुर्घटना घटी ॥

वो भी ध्यान की बात कर रहे हैं। हमारे ध्यान ही तो बंधन में है। हमारे ध्यान को मन दुनियावी चीजों में उलझा रहा है। 24 घण्टे यह इसे संसारी पदार्थों की ओर ले जा रहा है। हर पल इसे संभालने की ज़रूरत है।

पल पल सुरति संभाल ॥

जैसे वायु को स्पन्दन द्वारा महसूस किया जा सकता है, ऐसे ही ध्यान को अनुभव किया जा सकता है, आत्मा को भी अनुभव किया जा सकता है। आत्मा जानी जा सकती है। पर यह पंच भौतिक तत्वों से परे है। इसका नज़दीकी रूप है—ध्यान। अगर पेट में ध्यान रोको तो लगेगा कि कुछ रुका, अगर कंठ में ध्यान रोको तो भी पता चलेगा कि कुछ रुका, हृदय में रोको तो भी पता चलेगा, एक स्पन्दन लगेगा। इसी ध्यान को खींचकर ऊपर ले जाओ तो पता चलेगा कि कोई चीज़ ऊपर की ओर गयी। यह है—सुरति। अगर सुरति को आग में डालो तो जलकर भस्म नहीं होती, पानी में डालो तो गलती नहीं।

सुरति के दो अंग हैं। एक है—सुरति और दूसरा है—निरति। सुरति का एक हिस्सा शरीर में फँसा हुआ है। निरति स्वाँसा द्वारा शरीर में फँसी हुई है।

आत्मा का वास आज्ञाचक्र में है। अँधेरे में आदमी खड़ा है। आप

इतना तो जान जाते हैं कि कोई खड़ा है, पर पहचान नहीं पाते हैं। आप चुपके से देखना कि स्वाँस कोई ले रहा है, कोई खींच रहा है। यह खुद नहीं चल रही है। चुपके से देखना कि कौन ले रहा है। स्वाँस ली जा रही है। चुपके से देखना कि कौन ले रहा है। चुपचाप देखने पर पता चलेगा कि जो ले रहा है, वो आप हैं। वो सुरति है। उसका रँग-रूप नहीं दिखता, पर वो चेतन लगता है। इसी ने वहम में अपने को शरीर माना है। इसे यहाँ से उठाना है।

स्वाँस सुरति के मध्य में, कभी न न्यारा होय ॥

यह स्वाँस में बँधा है। इसे व्यस्त कर रखा है। यह स्वाँस ले रहा है। इसे उलझा दिया है। इस शरीर को जिंदा रखने के लिए स्वाँस की ज़रूरत है। इस तरह से इसे शरीर में फँसाया गया है। यह बात बड़ी कठिन है। दुनिया में कोई नहीं कह पायेगा। दूर तक भी इसका कोई ज्ञान नहीं है। केवल जोकरों की जमात इकट्ठा हो रखी है। ऊपर स्वाँस कैसे जाती है! इसी ने स्वाँस ऊपर फेंकनी है। जब ऊपर चलने लगेगी तो यह भी ऊपर की ओर ध्यान करने लग जायेगा। ऐसे में सुरति और निरति मिल जायेंगे। जब दोनों मिल जायेंगे तो बहुत बड़ी ताकत हो जायेगी।

सुरति और निरति मन पवन को पलट कर,

गंग और जमुन के घाट आने।

कहें कबीर सो संत निर्भय हुआ,

जन्म और मरण का भ्रम भाने ॥

जैसे दौड़ने के लिए दोनों टाँगों का समान महत्व है। एक टाँग से दौड़ा नहीं जाता; रास्ते में गिर जायेंगे। दोनों की ज़रूरत है। काम करने के लिए दोनों हाथों का भी समान महत्व है। एक हाथ से ज्यादा काम नहीं कर पायेंगे। दोनों हाथों से भारी वज़न भी उठा सकते हैं। इसी तरह सुरति और निरति—दोनों का एक हो जाना बड़ा महत्व रखता है। जब दोनों मिल जायेंगे तो 'फिर देखो गुलज़ारा है।'।



सात सुरति का सकल पसारा

हमारी आत्मा इस शरीर में सात मुकामों पर काम कर रही है। जैसे इन आँखों में सिस्टम है कि दृश्य दिखाती हैं, मुँह में सिस्टम है कि रस का अनुभव होता है। कान में सिस्टम है कि शब्दों का अर्थ या सार बताते हैं। इस तरह इंद्रियों से अलग-अलग काम हो रहे हैं। हमारे कान सुनने का काम करते हैं। यह सिस्टम इनमें है। आँखें देखने का काम करती हैं। त्वचा स्पर्श का अनुभव करती है। इस तरह शरीर में सात सुरति से काम होता है।

सात सुरति का सकल पसारा। सात सुरति से कुछ न न्यारा ॥

पहली अमी सुरति है। जैसे आँख, कान आदि अलग-अलग काम कर रहे हैं, इसी तरह शरीर में भी आत्मा सात रूपों से काम कर रही है। पूरा खेल शरीर में सुरति का है।

प्रथम सुरति आनन्द कहिये ॥

यह अमी सुरति है, जो आनन्द का अनुभव करवाती है। यह गुण आत्मा में है। जैसे दृश्य का अनुभव आँखें करवाती हैं, इस तरह आनन्द का अनुभव आत्मा करवाती है। यह सबमें है।

यह सुरति आनन्द देती रहती है। इसमें आनन्द है। इसमें मन घुस गया है। मन इस सुरति को चला रहा है। सुरति मन में रम गयी है। वो सोच रही है कि फलानी जगह घूमने जाना है। तो इस सोच में भी आनन्द मिला। यह सोचा मन ने। आनन्द सुरति से मिला था, पर मन ने जताया

कि यह इच्छा करने से मिला है। बड़ी बारीक बात है, बड़ा उलझाव है।

मन ऐसे काम कर रहा है जैसे पानी में चीनी मिलाई तो मीठा हो गया। सुरति में ऐसे मन रम गया है।

जो आनन्द का अनुभव आप कर रहे हैं, यह सुरति की ताकत है। जो दृष्य देख रहे हैं, वो आँख की ताकत है। इस तरह आनन्द सुरति सबमें है। मन बाहर जगत में आनन्द की अनुभूति करवा रहा है। सच यह है कि वो सुरति में है आनन्द। इस आनन्दमयी सुरति को मन और माया भ्रमित कर रहे हैं। इसे आभास होता है कि आनन्द बाहर से मिला।

पलट वजूद में अजब विश्राम है, होय मौजूद तो समझ आवे ॥

....तो

दूजी मूल सुरति कहीजे ॥

यह भी सबमें है। जब भी कोई काम करता है तो इसी ध्यान से करता है। सूई में धागा पिरोना है तो माताएँ एकाग्र हो जाती हैं, गाड़ी चलानी है तो ड्राइवर एकाग्र हो जाता है। जब किसी चीज़ को गहराई से करते हैं, तो मूल सुरति की ज़रूरत पड़ती है। तब वो निकलती है। हमारे शरीर में मूल सुरति का विशेष स्थान है। यह चीज़ पशुओं में भी है। सभी एकाग्र हो जाते हैं। आत्मा का गुण सबमें मिल रहा है। इस सुरति को भी मन दौड़ा रहा है। मन की हुकूमत हो गयी है। मन ख़ामखाह हुकूमत करने लग गया है। इसने अपना पूरा कब्ज़ा कर लिया है।

एक मूल अवस्था है हमारी, एक मूल सुरति है। यह चाहो नींद में जाओ तो भी रहती है, चाहो सुषुप्ति में जाओ, तो भी रहती है, चाहे सतलोक में जाओ तो भी रहती है। अगर यह मूल अवस्था नहीं होती, मूल सुरति नहीं होती तो हम सतलोक से आकर कैसे बताते कि एक सतलोक भी है, परम पुरुष भी है। इसका मतलब है कि कुछ बाकी रहता है। जैसे दूध का मूल रूप रहता है, खत्म नहीं होता। चाहे उसका दही बना दो, चाहे पनीर, पर उनमें भी दूध का मूल रूप नष्ट नहीं होता, एक

स्वाद रहता है। वो कभी समाप्त नहीं होता। आप किसी भी शरीर में जाओ, मूल सुरति खत्म नहीं होती है। चाहे कुछ भी हो जाए, नहीं होती है। यह मूल सुरति, यह बेसिक कॉन्शियस ही आत्मा है। हालांकि इसमें मन मिल गया। चाहे पानी में खटाई डाली। खट्टा हुआ, पर मूल स्वाद खत्म नहीं हुआ।

मुझे एक आदमी ने पूछा भी कि आत्मा सत्लोक जाती है तो क्या यह दुनिया याद रहती है? मैंने कहा कि नहीं रहती है। वो बोला कि यदि याद नहीं रहती तो यहाँ यह याद रहता है कि सत्लोक है? मैंने कहा—हाँ, बिलकुल। अगर मुझे याद न होता तो कैसे बताता कि एक अमर लोक है, जहाँ आत्मा आनन्द में रहती है। मैं कहता हूँ कि आपने जितने भी जन्म लिये हैं, वो सब आपको याद हैं, पर याद रहते हुए भी नहीं हैं।

जब आत्मा सत्लोक जाती है तो यह नहीं लगता है कि वाह, कैसा है। बहुत पीछे से ही यह याद आ जाता है कि यही तो मेरा घर है। वहाँ सभी पहचान वाले मिलते हैं। वहाँ पहुँचने पर याद आ जाता है कि मैं तो यहीं था। परम पुरुष को देखने पर ऐसा नहीं लगता कि पहली बार मिले हैं। वहाँ ठीक ऐसा लगता है, जैसे सपना देखने वाले को सपने की चीजें सच्ची लगती हैं, पर जब जगता है तो हँसता है, कहता है कि यह तो मिथ्या था। इसी तरह वहाँ पहुँचने पर लगता है कि मैं तो यहीं का था, पर झूठी दुनिया में चला गया था।

वहाँ क्या चीज थी, यह याद रहा। दिमाग भी यहीं रह गया, यादाश्त भी यहीं रह गयी, फिर कैसे याद रहा? वैज्ञानिक कह रहे हैं कि कोशिकाओं में याद करने की ताकत है, पर वे इससे आगे नहीं कह पा रहे हैं। जैसे रेलगाड़ी लेट हो, पर पता न हो कि कितनी लेट है तो वो लिखते हैं कि अनिश्चित समय के लिए लेट है या फिर अनाउंसमेंट करना ही बंद कर देते हैं। ऐसे वैज्ञानिकों को आगे की खबर नहीं है तो खामोश रह रहे हैं। पर मैं प्रमाण देता हूँ।

लोग मर जाते हैं, प्रेत योनि में पहुँच जाते हैं या पितर लोक में चले जाते हैं तो घर वालों को मिलते हैं। यानी याद है न। देही तो जल गयी, खोपड़ी भी जल गयी, दिमाग भी उसके साथ जल गया, फिर क्यों याद है कि यह मेरा भाई है। फिर क्यों याद है कि यह मेरी बीबी है। फिर क्यों याद रहा कि यह मेरी बेटी है। यानी एक यादाश्त थी जो नष्ट नहीं हुई। कभी पितर आकर कहते हैं कि दुखी हैं, कभी कोई और बात करते हैं। यानी यह है। यह क्या चीज थी? इसी को अंतःकरण कहा। जब भी हम लोग रूहानी सफर की बात करते हैं तो स्वप्न लगता है। जब कोई मर गया, शरीर छूट गया, स्वर्ग में चला गया तो पता चलता है कि फलाना हूँ, वहाँ मेरा घर है, वो मेरी बीबी है, मेरे इतने बच्चे हैं, कभी कभी आपकी दादी नानी स्वप्न में आती है, पता चलता है। वो स्वप्न नहीं होता है। मौत के बाद भी याद रहता है। सत्लोक में जाने के बाद भी याद रहता है। यानी एक यादाश्त है। अगर पितर लोक में गये तो यह याद रहा कि यहाँ क्या है। पार्थिव शरीर को जला दिया, दिमाग तो खत्म हुआ, पर फिर भी मूल सुरति से याद रहा। यही चौंकाने वाली बात है। यह कोई न समझ पाया। एक चेतना है, वो कहीं भी चले जाओ, होती है। सत्लोक में मन, बुद्धि आदि भी नहीं हैं तो फिर भी वहाँ की बातें याद रहीं। यह अजीब बात है। चाहे किसी भी अवस्था में जाओ, मूल सुरति रहती है।

चाहे दूध से बर्फी बनाओ, चाहे दही बनाओ, चाहे पनीर बनाओ, पर दूध का जो मूल रूप है, वो खत्म नहीं होता है। घी में भी दूध का मूल रूप है। इसी तरह चाहे सपने में जाओ, चाहे पितर लोक में, वहाँ भी मूल सुरति है। कहीं भी जा रहे हैं, मूल सुरति काम कर रही है। यह मूल सुरति हमारी आत्मा है। यह निर्मल भी है। आप नशे में हैं, तभी भी वो है। वो डिस्टर्ब नहीं होती है।

आप पूर्वजन्म की घटनाओं से भी जान सकते हैं। कभी कभी आप देखते हैं कि किसी को अपना पूर्वजन्म याद होता है। एक 5 साल के लड़के ने अपनी बेटी का कन्यादान किया। वो टी.बी. पर भी दिखाया गया। उसे अपने पूर्व जन्म की सारी कहानी याद थी। उसने अपने

कातिलों को सजा दिलाने की भी ठानी। जिनको सजा हुई थी, वो उसके कातिल नहीं थे। उसे धोखे से जिस तरह मारा गया था, कातिल के अलावा कोई नहीं जानता था। उसने वो सारी कथा बताई कि कैसे उसे मारा गया। यानी याद रहा सब। एक लड़की कह रही थी कि वो कल्पना चावला है। उसने भी कई बातें सच बताईं, कुछ बातें वो अटपटी बता रही थी। वो अपनी छोटी बुद्धि के अनुसार हो सकता है। वो जहाज देखकर डर जाती है। बस, अन्तर यह है कि आपको अपना पूर्व जन्म याद नहीं है।

गीता में भी आ रहा है—हे अर्जुन, इस आत्मा की आँखें नहीं हैं, फिर भी सभी दिशाओं से देख सकती है। हे अर्जुन, इस आत्मा की टाँगें नहीं हैं, फिर भी सभी दिशाओं से चल सकती है। हे अर्जुन, इस आत्मा को मुँह नहीं है, फिर भी सभी दिशाओं से बोल सकती है।

जैसे बिना पैरों के चला जा रहा है, बिना मुँह के बोला जा रहा है, बिना आँखों के देखा जा रहा है, वही चीज बिना दिमाग के भी याद कर रही है, यही मूल सुरति है।

हम कहते भी हैं— ‘धर्मराय जब लेखा माँगे, क्या मुख लेकर जायेगा ॥’ वो इसी मूल सुरति से लेखा लेता है। हरेक जीव का हिसाब होगा। वो कभी भी अन्याय नहीं करता है। उसकी सभा में चित्रगुप्त है, वो सज़ा सुनाता है कि इस पाप के लिए क्या सज़ा होनी चाहिए। जब उससे मामला नहीं सुलझता, कोई पेचीदा मामला आ जाता है तो स्वर्ग से विद्वानों की टीम को बुलाता है, वेदव्यास और अन्य मिलकर विचार करते हैं और सज़ा सुनाते हैं।

तो मूल सुरति है। जब भी ब्रह्माण्ड में जाते हैं तो मूल सुरति होती है। ये बातें कहने में नहीं आती हैं। मान लो कि किसी ने गुप्ता जी को कुछ कहा। गुप्ता जी उसे चार चाँट मारें तो कोई कहे कि ठीक ही किया। पर अंदर से कॉन्शियस कहेगा कि गलत किया। हम सबके अंदर एक चीज़ बैठी है। कुछ भी गलत नहीं करो। यह रानी सुरति है, इसलिए इसका नाम मूल सुरति रखा है। शरीर के सभी अंग चेतन हैं, पर ब्रेन अधिक

चेतन है। उससे अधिक कुछ चेतन नहीं है। इस तरह सातों सुरति में मूल सुरति चेतन है।

आदमी इनके बारे में कम जानकारी रख रहा है। किडनी अलग काम कर रही है, फेफड़े अलग काम कर रहे हैं। हालांकि उर्जा वही है। इस तरह ध्यान भी अलग-अलग तरीके से काम कर रहा है।

...तो तीसरी सुरति है—चमक सुरति।

तीजे चमक सुरति है भाई ॥

यह क्या कर रही है? आत्मा विभिन्न तरीके से काम कर रही है। पर अभी वैज्ञानिक नहीं समझ पा रहे हैं। ये कौन हैं? कालेज के, यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर लोग हैं। पाँच तत्वों पर रिसर्च करने वाले हैं। लेकिन सुरति का खेल नहीं समझ पा रहे हैं। यही चमक सुरति आँखों, पावों आदि को चेतन कर रही है। देख तो आँख रही है, पर इसे चेतन करने वाली सुरति है। बल्ब जल रहा है तो बिजली का कमाल है। हीटर चल रहा है तो भी बिजली का कमाल है। जैसा पात्र मिला, वैसा ही काम बिजली ने करना शुरू कर दिया। आत्मा भी सात मुकामों पर अलग-अलग काम कर रही है। सभी इंद्रियाँ चमक सुरति से काम कर रही हैं। अगर चमक सुरति न हो तो आँख देखना बंद कर देगी। चमक सुरति पूरे शरीर को क्रियाशील कर रही है, सजग कर रही है, होश में ला रही है। देखा न, हमारी आत्मा शरीर में अलग-अलग तरीके से काम कर रही है। पर सिर में ज्यादा चोट लग गयी तो आत्मा क्यों नहीं काम कर रही है? जैसे ढोल फट गया तो हाथ हैं, तो भी नहीं बजता है। ऐसे ही शरीर नष्ट हो गया तो आत्मा काम नहीं कर पाती है। शरीर का रोम-रोम चमक सुरति से चेतन है। एक पौधे के लिए पानी जो काम कर रहा है, वही काम वो चमक सुरति शरीर के लिए कर रही है।

तो चौथी है—शून्य सुरति। यह शून्य सुरति बड़ी खास है। इससे खामोश हो जाता है, अपने नज़दीक हो जाता है। यह शून्य सुरति का खेल है। तब कुछ भी चिंतन अच्छा नहीं लगता है। हरेक में ये चीजें हैं; हरेक यह करता है; हरेक में यह मिलता है।

तो पाँचवीं सुरति है—निश्चय सुरति ।

शुभ अरु अशुभ सुनावे दोई ॥

यह अच्छे-बुरे का ज्ञान देती है। वो फैसला करती है कि क्या उचित है, क्या अनुचित। कभी आप मन के वेग में जल्दी से निर्णय लेते हैं। पर कोई अन्दर से कहता है कि यह ठीक नहीं है। कभी कुछ करने के बाद आप पछताते हैं। करने वाले भी आप थे, पछताने वाले भी। मन उसी समय संकेत दिया। आपने मन के वेग में वो काम कर लिया। पर अंदर बैठी निश्चय सुरति ने कहा कि यह गलत हुआ। यानी आपका फैसला भी आपका नहीं है। आत्मा मानसिक पिंजड़े में मायावी जीवन जी रही है।

छठी सुरति है—‘ठाँव ठाँव रस चाखे ॥’ इससे आप स्वाद को अनुभव करते हैं। इसमें भी मन बैठा है। यह केवल हमारी जितनी भी इंद्रियाँ हैं, उनको चेतन करती है। आपकी बुद्धि, आपका चित्त आदि को चेतन करती है। यह भी आत्मा का खेल है।

आत्मा चली जाती है तो शरीर काम नहीं कर पाता है। कभी अचानक भी शरीर छूट जाता है। कोई बीमारी नहीं होती है, कोई मंजे पर भी नहीं होता है, फिर भी चला जाता है। 10-15 मिनट पहले वो काम कर रहा होता है, पर अचानक ही आत्मा निकल जाती है। वैज्ञानिक चक्कर में आ जाते हैं। तो सुरति का विशेष स्थान है। शरीर में जो भी काम हो रहा है, आत्मा का खेल है।

सप्तम सुरति है हृदय के माहीं। हृदय से कछु न्यारा नाहीं ॥

इसका काम है कि जो खाया, उसे हरेक अंग तक पहुँचाना। मल-मूत्र को बाहर करना। सारे काम आत्मा के हो रहे हैं। पर काम करता हुआ शरीर लग रहा है। पर सच्चाई परे है। काम करने वाला आत्मा है। आत्मा ही सारे काम कर रही है।

तो सात सुरति से सारे काम हो रहे हैं।



सबमें आत्म रूप पछान

यह धर्म कह रहा है कि 84 लाख योनियों में एक ही आत्मा है। वही आत्मा चींटी में भी है, वही हाथी में भी है, वही समस्त जीवों में है। क्या प्रमाणित किया जा सकता है? हाँ, प्रमाणित हो रहा है। क्या इसकी झलक देखी जा सकती है? हाँ। कोई उदाहरण, कोई प्रमाण है क्या? हमारा धर्म कह रहा है कि सबमें एक ही आत्मा है। प्रमाण देता हूँ।

मैं प्रमाण देता हूँ कि सब जीवों में एक आत्मा है। प्रेम की वृत्ति सबमें एक है, बचने की वृत्ति सबमें एक जैसी है, दुख-सुख की वृत्ति सबमें एक जैसी है। आपने जीवन में परखा नहीं कि उनमें कितनी ताकत है।

यह अन्य जीवों में भी है। उदाहरण देता हूँ। एक कट्टू है, वो किसी को अपने शरीर को हाथ नहीं लगाने देता है। घास खिलाने वालो को भी नहीं, पानी पिलाने वाले को भी नहीं, गोबर उठाने वाले को भी नहीं। किसी को भी वो हाथ नहीं लगाने देता है। है बड़ा शांत। मैं रोटी देने जाता हूँ तो वो आगे आता है, मुँह पास करता है, कहता है कि हाथ लगाओ।

मैं छुट्टी पर था तो कुल्लियाँ में आया था। मेरे एक नामी ने, जो फौज में मेरे साथ था, अपने घर चिट्ठी लिखी कि गुरुजी आ रहे हैं, उन्हें पाँच किलो घी भेज देना। उसका घर कुछ दूर था आश्रम से। तो उसके पिता जी आए। उन्होंने घी दिया। तब लोग जमीन से कुछ ऊपर सब चीजें खूँटे से टाँगते थे। वहाँ छीके लगे होते थे। तो मैंने घी लेकर वहाँ रख दिया

और काम करने लगा। इतने में वहाँ एक कुत्ता आया। वो अक्सर वहाँ घूमता रहता था। उसने दीवार पर दोनों पैर रखे और छलाँग लगाकर घी के डिब्बे को पकड़कर नीचे गिरा दिया। डिब्बा खुल गया, घी बाहर आ गया। अब वो घी चाटने लगा। मैंने देखा कि यह तो सारा घी खराब कर गया। जूठी कर दिया उसने। मैंने कहा कि अब तुझे नहीं छोड़ूँगा। उसके पीछे लग गया सोटी लेकर। पर वो भाग गया। मैंने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। कभी पत्थर उठाकर मारता, कभी सोटी लेकर उसके पीछे जाता। पर वो बड़ा तेज था, बचकर भाग जाता था। कहीं बैठा दिख जाता तो मैं सोटी लेकर जाता, पर वो भाग जाता, हाथ नहीं आता था। मैंने सोचा कि इसे सबक सिखाना है। पर वो हर बार बच जाता था। बड़ा चालाक था। तीन दिन मैं लगा रहा, पर वो हाथ नहीं आया। तब मैंने विचार किया कि छोड़ो, जानवर है। चौथे दिन वो मुझे आम के पेड़ के नीचे लेटा दिखा। मैंने सोटी उठाई और धीरे धीरे गुस्से की मुद्रा में उसकी तरफ बढ़ा। पर अन्दर से मेरी भावना उसे मारने की नहीं थी। आप मानेंगे, वो नहीं भागा। मैं उसके बहुत पास पहुँच गया, पर वो फिर भी मस्त लेटा रहा और अपनी पूँछ हिलाने लगा प्यार से।

देखा न, जब तक मैं अन्दर से सोच रहा था कि इसे सबक सिखाना है, तब तक वो भाग रहा था, पर जब अन्दर से दयालु हुआ तो पास जाने पर भी वो नहीं भागा। यह क्या था। कितना बड़ा मनोवैज्ञानिक था वो। जान गया था कि यह अब मुझे नहीं मारेगा, केवल डरा रहा है। कुत्ते में अक्ल कैसे आई? यह थी मूल सुरति। इसी के पास प्रेतात्मा आ जाती है। इसी को मन भटका रहा है। इतना गुप्त तरीके से वो यह काम कर रहा है कि पता नहीं चल पा रहा है। चाहे कुछ भी कर लो, नाम के बिना इससे निजात नहीं मिलने वाली। मूल सुरति उधेड़बुन में लगी है। आप दुनिया के जितने भी काम कर रहे हैं, इसके बिना नहीं हो सकते हैं। इसी की ज़रूरत पड़ रही है। इसी के द्वारा जीव-जंतु भी काम कर

रहे हैं। इसी के द्वारा वे भी अनुभव कर रहे हैं कि हमारा परिवार है। लग रहा है कि एक जगह पर कहीं हम सब समान हैं।

सबमें आत्म रूप पछान

ये जीव-जंतु अन्याय के खिलाफ भी आवाज उठाते हैं। उदाहरण देता हूँ। मैं उधमपुर जा रहा था। रास्ते में कुछ बंदर खा रहे थे, किसी ने कुछ डाला था। मेरी गाड़ी के आगे एक दूसरी बस थी। जैसे ही वो पास पहुँची तो सब बंदर भाग कर साइड में हो गये, पर एक बच्चा रह गया। वो गाड़ी के पिछले पहिये के नीचे आ गया। उसकी पिछली टाँगें जमीन के साथ चिपक गयीं और आगे मुँह से वो माँ को पुकारा। मेरी गाड़ी कुछ पीछे थी। इतने में वो भी पास पहुँच गयी। बंदरों ने सोचा कि शायद इस गाड़ी के नीचे आया है। सभी ने मिलकर हमला बोल दिया। एक मोटा बंदर आगे आया। वो ड्राइवर वाली साइड आया और उसे पकड़ने लगा। जैसे इंसान मारने के समय किसी की कमीज का कॉलर पकड़ता है, वैसे ही वो पकड़ने लगा। मैंने कहा कि जल्दी से गाड़ी दौड़ा। देखा न, वो बदला लेना चाहते थे। यदि वो ड्राइवर गाड़ी चलाकर भागता न तो बंदरों ने उधर ही खत्म कर देना था उसे।

एक नन्हा-सा मच्छर भी तो देखो न। जब आप हमला करने लगते हैं तो झट से उड़ जाता है। वो जान जाता है कि हमला हुआ है। यानी सुरक्षा की भावना भी तो सबमें एक जैसी है। आत्मवतन सर्वभूतेशू।

एक महात्मा सबमें मूल सुरति को देखता है। यह मूल सुरति सभी जीवों में भी है। यही परम पुरुष का कण है, यही उसका अंश है।

सबके अंदर छः शरीर भी हैं, वो निराले हैं। सभी शरीरों का स्वभाव है, तासीर है। जैसे आपके पास बड़े सूट हैं। एक सूट है, जो आप गर्मी में पहनते हैं, एक है जो आप सर्दी में पहनते हैं, एक है, जिसे आप बहुत सर्दी होने पर निकालते हैं।

...तो मूल सुरति सबमें है। चाहे चींटी है, उसमें भी मूल सुरति

है। उसके नन्हें रूप को देखकर भ्रमित नहीं होना। धरती पर ऐसे भी जीव हैं, जिनकी उम्र मात्र 3 घण्टे है। वे भी जवान होते हैं, शादी करते हैं, बच्चे होते हैं, बूढ़े होते हैं और मर जाते हैं। उनके पास भी मूल सुरति है।

मैं एक बगीचे में लड्डू खा रहा था। बचपन से ही मैं एकांतप्रिय रहा हूँ, कभी मिट्टी भी नहीं खाई। बच्चों से बड़ा डरता था, उनसे दूर ही रहता था, उनकी हरकतें बेवकूफों वाली लगती थी। बड़ा गंभीर था। एक पहाड़ था, मैं वहाँ चला जाता था एकांत में। तो मैं बगीचे में लड्डू खा रहा था, एक टुकड़ा उसका नीचे गिर पड़ा। एक चींटी आई, उसने देखा, हिलाना चाहा, पर नहीं हिला। वो चली गयी। मैं जानता था कि चींटी बड़ी हिम्मती होती है। मैं भी उसके पीछे-पीछे गया, सोचा देखता हूँ कि कहाँ जाती है, क्या करती है। वो कुछ दूर तक गयी, उसे 1-2 मिनट लग गये वहाँ तक जाने में। वहाँ एक बिल था, वो उसमें चली गयी। 20-25 सैकेंड बाद वो बाहर आई तो बड़ी स्पीड में पीछे-पीछे कई चींटियाँ उसके साथ आ गयीं। वो स्पीड में उन्हें लेकर वहाँ पहुँची। सबने मिलकर उसे उठाया। उनका कॉन्शियस कैसा था! उठाने की उनकी टाइमिंग भी बड़ी प्यारी थी। उनके लिए वो पहाड़ से कम नहीं था। कुछ की टाँगें सिकुड़ गयीं तो फिर पोजीशन चेंज की और घसीटते-घसीटते उसे वहाँ तक लाई। आधा घण्टा लगा। अब खड्डे के अंदर वो नहीं जा पा रहा था। फिर उन्होंने उसके टुकड़े किये और अंदर बिल में ले गयी।

इसका मतलब है कि पहले चींटी ने वहाँ जाकर सब चींटियों को आवाज़ लगाई होगी, कहा होगा कि चलो जल्दी, बहुत कुछ है खाने को। फिर कमाण्डर ने तगड़ी-तगड़ी चींटियों को चुना होगा। जैसे कुछ भारी काम होता है तो मैं भी सेवा के लिए चुनता हूँ, जो कर सकते हैं। तो उन्होंने भी छाँटा होगा। वो वहाँ पहुँचीं। फिर अक्ल कितनी थी! सुराख कम था तो टुकड़े किये। यानी मूल सुरति थी उनके पास। यही सबमें है।

आपको बताऊँ, सतयुग में सभी जानवरो की भाषा जानते थे।

सच मानना। मूल सुरति सबमें एक है। बच्चे रोते हैं। यह रोना क्या है? यह एक भाषा है। पर इसको जो समझे वो जान सकता है। जो समझता है, उसे भी नहीं पता है कि वो जानता है यह भाषा। माँ समझती है, पर वो तय नहीं है कि उसे पता है। बच्चे को बोलना नहीं आता है, पर अपनी बात कह देता है। यह मूल सुरति है। वो रोता है तो पुकारता है—आओ। मूल रूप से हम सबकी एक ही भाषा है। धरती पर अनेक भाषा बोलने वाले हैं, विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं, पर विचारों को बाहर रखना ही मूल लक्ष्य है।

वो रोता क्यों है? माँ को बुला रहा है। जोर से क्यों रोता है? ज्यादा दिक्कत में है तो बुलाता है। रो क्यों रहा है, क्योंकि अलफाज निकालना नहीं आते। वो रोने की आवाज़ में अपनी बात कह रहा है कि यह दिक्कत है। वो जान चुका है कि रोने के बाद मेरी माँ आती है। उसके पास ज्ञान है। वो जानता है कि मेरी माँ समझती है। यह काम पशु भी करते हैं। अरनिया में मैं सत्संग कर रहा था तो एक भैंस जोर-जोर से चिल्लाए जा रही थी। किसी ने ध्यान नहीं दिया। उसे तो धूप में बाँध रखा था, वो परेशान थी। वो कह रही थी कि मैं छाया में नहीं जा पा रही हूँ, मुझे बाँध रखा है, खोलो। जहाँ उसका मालिक था, वहीं मुँह करके चिल्ला रही थी। मैंने सुना, पर और कोई नहीं सुना कि क्या कह रही है। मैंने एक सत्संगी को धूप में खड़ा किया। एक मिनट बाद पूछा कि कैसा लग रहा है? उसने कहा कि बहुत कष्ट है। मैंने उसी को वहाँ भेजा, कहा कि उस भैंस को खोलकर छाया में बाँधो, चाहे जिसकी भी भैंस हो। फिर मैंने देखा कि उसे प्यास भी लगी थी। तो एक को कहा कि बाल्टी लेकर जाओ और उसे पानी पिलाओ। तो मैंने उसकी पुकार सुनी। मैंने उसकी भाषा समझी।

चोराचौकी में सत्संग कर रहा था तो कौवे आकर पेड़ पर बैठे। वे चिल्लाए जा रहे थे। कोई नहीं उड़ाया उनको। मैंने सुना, वो बाकियों को

बुला रहे थे कि आओ, यहाँ बहुत कुछ बना है खाने को। मैंने हारकर एक को कहा कि उड़ाओ, पर पहले इसलिए नहीं कह रहा था कि सोचा यह खुद उड़ाए तो ठीक है, सत्संग में बाधा न पड़े।

हमारी एक गाय है, बड़ी चालाक है। उसके साथ में दो और गाएँ बँधी होती हैं। जब तीनों को चारा डालता हूँ तो वो क्या करती है कि अपने सामने पड़ा हुआ नहीं उठाती है। पहले आजू-बाजू का खाती है, जो दूसरी गायों का हिस्सा है, क्योंकि उसे पता है कि यह सामने वाला तो मेरा ही है। वो खाती भी बड़ी स्पीड में है। एक दिन एक गाय छूट गयी और जहाँ सुबह का चारा पड़ा था, वहाँ पहुँचकर खाने लगी। दूसरी गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगी। वो बुला रही थी। जो देखभाल करने वाला था, वो गया तो देखा कि एक गाय खुली है। यानी वो सोच रही थी कि मेरा हिस्सा भी है इसमें और यह सब खा रही है।

इसलिए किसी से नाइंसाफी नहीं करना। गोस्वामी जी कह रहे हैं—

हित अनहित पशु पक्षिन जाना ॥

मुझे भैसे बुलाती हैं, कभी गर्मी लगती है तो कहती हैं कि पंखा चलाओ, कभी कहती हैं कि आज बड़ी देर कर दी खिलाने में, जल्दी आओ, भूख लगी है। यानी एक मूल सुरति सबमें है। तभी तो शास्त्रों में कहा गया— ‘आत्मवतन सर्वभूतेशू।’

आप विश्वास करना, आत्मा में हरेक भाषा बोलने की ताकत भी है। सच बताता हूँ, मैं संसार के समस्त प्राणियों से बात की है।

मैं मकान बना रहा था। एक कमरे का फर्श नहीं डाला। पैसे का जुगाड़ नहीं हुआ। दो साल हो गये। माँ ने कहा कि वहाँ भी फर्श डालो, उसका इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। एक दिन मैं जब पत्थर डालने लगा तो बहुत से चींटे बाहर निकल कर आए। लाल-लाल रंग के अजीब चींटे थे। उन्होंने कहा कि क्यों छेड़ रहे हो, उन्होंने हमला किया, कहा कि हम

यहाँ रहते हैं, हमारे बच्चे भी हैं। मैंने कहा कि बाहर आ जाओ। वो नहीं आए। मैंने अगले दिन फिर कहा कि एक दिन की मौहलत और देता हूँ। वो अगले दिन भी नहीं गये। मैंने पत्थर डालने शुरू किये। एक मिस्त्री आया, कहा कि डालता हूँ। मैंने कहा कि यह मेरा निजी काम है, आश्रम का नहीं है, मैं खुद करूँगा। मैंने बड़ी स्पीड में पत्थर बिखेर दिये। 50-60 चींटे आए, हमला किया, कहा हम सब अंदर हैं। मैंने चींटों को कहा कि तुम्हें समय दिया था, पर तुम नहीं निकले, अब मुझे फर्श तो डालना है। मैंने डाल दिया। 48 घण्टे बाद मैंने फर्श डाल दिया। 12 बजे रात को सभी चींटे मेरे सामने आए, कहा कि हमारे बच्चे हैं वहाँ फर्श तोड़ो। सच मानना, वो इंसान की भाषा में बोल रहे थे। मैंने कहा कि अब नहीं तोड़ूँगा, बड़ी मेहनत से डाला है, तुम जमीन खोदकर कहीं ओर से अपना रास्ता बना लो।

जब मैं कहूँगा तो आपको आश्चर्य होगा। किसी देवस्थान पर जाता हूँ तो बात करता हूँ। गंगा जी के पास गया तो गंगा जी से बात की है, शिवजी के स्थान पर गया तो शिवजी से बात की है। जहाँ स्थान है, वे हैं। पर आप ऐसे ही आ जाते हैं।

मैं जे. सी. ओ बना तो पार्टी देनी थी। मुझे कहा कि पार्टी दो। उनकी पार्टी क्या होती है—शराब, मुर्गे। मैंने कहा कि कितने पैसे लगेंगे? कहा—5 हजार। मैंने कहा कि मैं 7 हजार दूँगा, पर मुर्गे नहीं खिलाऊँगा। काजू-बादाम, जो भी खाना हो, खिला दूँगा। वहाँ एक बात होती है कि पार्टी करवानी पड़ती है। आपपर मुसीबत आए तो आप कमजोर पड़ जाते हैं। पक्रे रहें। तो वो खाते भी राक्षस की तरह हैं। मैं मीट, शराब की पार्टी नहीं दे रहा था। कुछ शांति में अशांति का सृजन कर देते हैं और कुछ अशांति में भी शांति ढूँढ़ लाते हैं। मैंने बड़ा कहा कि कुछ भी खाओ, खिला दूँगा, पर यह नहीं। वो नहीं माने। मैंने भी नहीं खिलाया। वैसे 10-15 दिन के अंदर ही करवानी होती है। वे बड़े लोगों के हवाले देने लगे

कि वो भी नहीं खाता था, उसने भी करवाई..... उसने भी करवाई। पर मैं अड़ गया कि नहीं दूँगा यह सब। कुछ उत्तेजित करने के लिए कहने लगे कि कंजूस है। मैंने कहा कि 7 हजार की पार्टी करवा रहा हूँ। वो नहीं माने। समय निकलता गया। 6 महीने निकल गये, मैंने नहीं करवाई पार्टी। बाद में कहा कि दो। मैंने कहा कि अच्छा जिस दिन मुर्गे वाला दिन होगा, उस दिन चबा लेना हड्डी। वो नहीं माने। कहा कि किसी दूसरे दिन। मैं आखिर कहा कि अच्छा दारू पी लो, सोचा कि पीकर नाली में ही गिरेंगे, पाप तो नहीं होगा, जीव हत्या तो नहीं होगी। अंत में तय हुआ कि पैसे दे दिये जाएँ, वो जो करना है, कर लें। शाम को छः बजे एक लड़का 5-7 मुर्गे लाया। टाँगें पकड़ा हुआ, धड़ नीचे की ओर। वो चिल्ला रहे थे, कां-कां कर रहे थे। मैं रात को लेटा तो 12 बजे सभी मुर्गे मेरे सामने आए, इंसान की भाषा में कहा कि इंसान करो। मैं जो कह रहा हूँ, सच्चाई है। कहा कि आप जिम्मेदार हैं। वो दो डिमाण्ड रखे, कहा—या तो हमें मानव तन दो या फिर मुक्ति। मुझे उनमें से एक बात माननी पड़ी उनकी।

किसी का दिल मत दुखाओ। जब भी लगे कि दिल दुखा तो साँत्वना दो। यह मत सोचना कि क्या बिगाड़ेगा।

बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो, और भी गिरजाघर हैं।

लेकिन किसी का दिल मत तोड़ो, खास खुदा का घर है ॥

आपको पेड़ों की बात बताता हूँ, उनमें भी मूल सुरति है। मैं पेड़ों से भी बात कर लेता हूँ। आपने सुना होगा कि फलाना ऋषि पेड़ों की भाषा जानता था, वो सच में जानते थे। मेरा मानना है कि आप भी समझ सकते हैं। हरेक प्राणी की एक ही भाषा है। जीव, जन्तु, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सबकी एक ही भाषा है और वो है—आवाज़, वो है ध्वनि, वो है साउंड। उस आवाज़ में भाव छिपा हुआ है। बस, उस भाव को जान लो तो आप भाषा को जान लेंगे। कुत्ता भी मार खाने पर हूँ-हूँ करता है तो समझ में आ जाता है कि कह रहा है कि बहुत जोर से मार दिया, पीड़ा

हो रही है। यह भाषा सभी माँ के पेट से सीखकर आते हैं। माँ बच्चे को बाद में सिखाती है, बच्चा पहले माँ को भाषा सिखाता है अपनी। वो रोकर सिखाता है। वो रोकर बताता है कि थका हुआ हूँ, पासा पलटना है; वो रोकर बताता है कि भूख लगी है। तब माँ समझ जाती है कि यह क्यों रो रहा है, इसकी किस आवाज़ में क्या भाव छिपा है। यानी आत्मा सबमें समान रूप से काम कर रही है। इसलिए यह एक भाषा है। मैं रात्री में अपने कुल्ले में लेटा था तो रात को 1 बजे गाय रंभ रही थी। मैंने सोचा कि गाय रात को नहीं रंभाती है। मैं उठा और वहाँ गया, जहाँ गाय बँधी थी। मैंने गाय की रखवाली करने वाले बाबा को बुलाया और पूछा कि आपने गाय की आवाज़ नहीं सुनी क्या! वो बड़ी देर से बोल रही है, क्या बात है? वो बोला कि उसकी बछड़ी बाहर बँधी हुई है। मैंने कहा कि अन्दर क्यों नहीं बाँधी है? कहा कि जगह नहीं थी। मैंने कहा कि अन्दर करो। देखा न, मुझे उसकी आवाज़ में करुणा लग रही थी। तो वे मनोयोग से भाव को जान जाते थे। अंग्रेज़ का बच्चा भी रोकर ही माँ को अपनी भाषा सिखा रहा है। इस तरह हमने जो चीज़ आपको दी, वो भी सबमें समान रूप से काम कर रही है।

एक जगह मैं सत्संग करने गया था। वहाँ आम के पेड़ खजूर के पेड़ की तरह सीधे लंबे थे। न उनकी शाखाएँ थी, न प्रशाखाएँ। मैंने लोगों से पूछा कि ऐसा क्यों है? कोई कुछ कहे तो कोई कुछ। बात कुछ और थी। बात यह थी कि पेड़ को मालूम है कि किसी पेड़ के नीचे आ गया तो मर जायेगा, इसलिए वो होड़ से बढ़ रहे थे। सड़क किनारे लगे पेड़ उसी दिशा में बढ़ते हैं, जहाँ उन्हें गाड़ियों की परेशानी न हो। तो सूर्य की उर्जा पाने के लिए सभी सीधे-सीधे खड़े हो गये थे। इस तरह आत्मदेव चेतन है।

राँजड़ी में एक पेड़ है, एक दिन उसकी एक डाल बड़ी ज़ोर से हिली। मैंने सोचा कि कोई बड़ा पक्षी आकर बैठा है। ऊपर देखा तो

इंसान की गर्दन आई, कहा—नमस्कार। हिंदू धर्म में पेड़-पौधों की पूजा की जाती है, इसमें गहराई है। तो कहा कि आपकी बड़ी फसल है, कोई कमी नहीं है, पर मैं और मेरा छोटा भाई है, हम दोनों बीमार पड़ गये हैं। सभी आपकी सेवा करते हैं, हम भी करना चाहते हैं। मैंने कहा—करो। कहा कि आप दो बार दवा छिड़क देना। एक दिसंबर में और एक मार्च में। मैंने सुबह माली को बुलाया और कहा कि इसपर दवा छिड़क देना। उसे थोड़ा बताया कि पेड़ ने कहा है। बहुत बुर लगे। फल लगे, वो गिरने लगे। मैंने पूछा कि भाई हमने दवा छिड़की तो भी फल नहीं लगे। उसने कहा कि दवा एक बार छिड़की है। वो माली एक बार छिड़ककर भूल गया था। वो चेतन पेड़ है। उसने पहला फल गिराया, जब मैं ब्रश कर रहा था। गजब का फल था, कहा—खाना। मैंने फल तुरना को दिया, कहा कि इसे रखो, भोजन के साथ देना। जब मैंने फल खाया तो वैसे ही उसने कहा कि आज मैं धन्य हो गया, मैं यही चाहता था।

जो जीव महापुरुषों के चरणों के नीचे मर जाते हैं, वो मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। जिस पेड़ का फल खाया, वो मुक्त हो जायेगा। जिसके घर में भोजन किया, समझो उसने पूरे ब्रह्माण्ड को भोजन खिला दिया। 100 योगी को भोजन खिलाना एक साधु को भोजन खिलाने के बराबर है। साधु वो जो काम, क्रोध को छोड़ा है, वो नहीं जो साधु का चोला पहना है। और पूरे ब्रह्माण्ड को भोजन खिलाना और एक संत को भोजन खिलाना एक समान है।

तो पेड़ कितना चेतन था। वो फल तब गिराता है, जब मैं हूँ या वो लड़की तुरना, क्योंकि वो जानता है कि यह लड़की नहीं खाती है। बाकी खा लेते हैं। वो फल भी छिपाकर रखता है। ढूँढ़ते रहो, नहीं मिलेगा।

एक दिन मैंने एक मेंढक की करुण आवाज़ सुनी। वो सहायता के लिए पुकार रहा था। मैं गया तो देखा कि उसे साँप निगल रहा था। पूरा नहीं निगला था। पर कुछ हिस्सा निगल चुका था। गर्दन बाहर थी। मैं

पहुँचा तो साँप ने भी मुझे देखा और मेंढक ने भी देखा। मैंने सोचा कि इसे बचाता हूँ। साँप ने मेंढक को वहीं छोड़ा और चला गया। वो मेंढक वहीं खड़ा रहा। वो मुझे धन्यवाद दे रहा था, कह रहा था कि आज आपने मेरी जान बचाई। वो तरंगों की भाषा बोल रहा था।

मेरे कुल्ले में एक चिड़िया का जोड़ा रहता था। उन्होंने घोंसला बना रखा था वहाँ। 4-5 बच्चे भी थे। मैं परेशान था उनसे। वो बच्चों को वहाँ पाल रहे थे। दोनों बारी-बारी से खिला रहे थे बच्चों को। एक दिन मैं खटिया पर बैठा था; पंखा चल रहा था; चिड़िया आई; उसने ध्यान नहीं दिया और पंखे से टकरा गयी। वो वहीं मर गयी। मैंने लड़के को बुलाया और कहा कि इसे बाहर छोड़ आ, मर गयी है। कुछ देर बाद चिड़ा आया। उसने जब अपनी मादा को नहीं देखा तो एक आवाज़ निकालने लगा। वो उसे एक ही आवाज़ में पुकार रहा था। पर जब नहीं मिली तो घास के तिनकों को तोड़कर वहाँ ढूँढ़ने लगा कि कहीं वहाँ तो नहीं छिपी हुई है। मैं देख रहा था। वो उसे एक ही आवाज़ में पुकारे जा रहा था। मान लो कि उसका नाम प्रीति है तो उसी आवाज़ में पुकार रहा था। वो बच्चों को भी खिलाए जा रहा था। जब अधिक देर हो गयी तो वो परेशान हो गया। फिर वही आवाज़ देकर बुला रहा था, पर अब उसकी आवाज़ में करुणा भर आई थी, परेशानी थी। वो 2-3 दिन ऐसा करता रहा। वही आवाज़ में पुकारता रहा अपनी मादा को।

इसलिए हमारा धर्म कह रहा है कि किसी भी प्राणी को मत सताओ। आत्मदेव सबमें समान रूप से काम कर रहा है।

इसलिए भाई, सबमें एक आत्मा को देखो, किसी को मत मारो।

जीव न मारो बापुरा, सबके एकै प्राण।

हत्या कबहुँ न छूटती, कोटि सुनो पुराण॥



पलट वजूद में अजब विश्राम है

सभी आनन्द की खोज में हैं। किसी को कहीं से मजा आ रहा है तो किसी को कहीं से। इंसान चाहता क्या है—सुख। गुलाबजामुन, रसगुल्ला, बर्फी में मजा ढूँढ़ता है, पर वो सदैव नहीं मिलता। कभी कभी वहाँ से भी ऊब जाता है और किसी दूसरी चीज में मजा आने लगता है। इसका मतलब है कि गुलाबजामुन का मजा सदा के लिए नहीं है। फिर गुलाबजामुन में मजा नहीं हो सकता। अगर होता तो सदैव मिलना चाहिए था। संतुष्टि नहीं मिली, तभी तो दूसरी चीज में मजा ढूँढ़ने लगा। इस तरह संगीत का मजा लेता है बंदा, लेकिन कभी नहीं भी आता मजा वहाँ से, तो कहते हैं कि बंद करो, सिर दर्द हो रहा है या बहुत सुन लिया यह संगीत, कुछ और सुनाओ। यानी संगीत में भी मजा नहीं है। कभी बिरह संगीत में मजा आता है तो कभी वीर रस का संचार करने वाले संगीत में। एक ही में हर समय मजा नहीं आता। तो दृश्य भी कभी कोई सुन्दर लगता है तो कभी कोई। अधिक क्या कहें, अपनी स्त्री को छोड़ दूसरे की स्त्री की तरफ रुझान क्यों होता है। यानी एक में ही सदैव मजा नहीं मिला। संतुष्टि नहीं हुई, तो सोचा कि दूसरी में होगा। नहीं, यह सब इसलिए हुआ क्योंकि मजा किसी में नहीं है, मजा तो धुन में है, मजा तो आत्मा में है। बाहर के मजे से संतुष्टि क्यों नहीं हुई? क्योंकि आत्मा के मूल में आनन्द ही आनन्द है। यही आनन्द बाहर अशुद्ध रूप से प्रतीत हुआ। चोर को चोरी में आता है, शराबी को शराब में। कातिल को क़त्ल करने में

मजा आता है। जब आत्मा अपने को देख लेगी तो फिर संसार का कोई भी मजा इसे आकर्षित नहीं कर पायेगा। फिर ज्ञान हो जायेगा कि मजा तो भीतर है, बाहर केवल प्रतीत हो रहा है।

दुनिया में जो मजा है, वो केवल प्रतीत होता है.....होता नहीं है। जैसे स्वप्न में रसगुल्ला खाया, स्वप्न में राजा बन गये तो यह प्रतीत हुआ, था नहीं। दुनिया की जिन जिन चीजों से मजा आ रहा है, केवल प्रतीत मात्र है। प्रतीत हो रहा है कि मजा है इसमें, पर वास्तव में मजा आत्मा का है। यदि यह अपने में मजा ढूँढ़ने लगे तो फिर कहना ही क्या। यह काम गुरु के ध्यान से ही संभव है, इसलिए गुरु चरणों में चित्त लगाया तो मजा ही मजा है। गुरु की आत्मा चेतन है। जैसे ही आपने ध्यान किया तो आपकी आत्मा भी चेतन होती जायेगी और वो मजा मिलने लगेगा जो कभी समाप्त नहीं होगा।

आदमी को मजा लेना नहीं आया। बचपन में मजा माँ में प्रतीत हुआ। माँ नहीं मिली तो रोना शुरू.....। फिर बड़ा हुआ तो खेल में प्रतीत होने लगा मजा। अच्छा, अब माँ में क्यों नहीं रहा? क्योंकि माँ में था ही नहीं मजा। माँ ने आवाज लगायी—बेटा, आ जा, बहुत खेल लिया। तो कहा—बाद में आता हूँ.....थोड़ा और खेलकर। वही माँ है, जिसे पल भर भी नहीं छोड़ना चाहता था, पर अब यह क्या हो गया। तो फिर थोड़ा बड़ा हुआ तो पढ़ाई में लग गया, रात को उठ-उठकर पढ़ने लगा। लड़के आए, कहा कि चलो खेलने। कहा कि नहीं, तुम जाओ, मुझे पढ़ाई करनी है। जिस खेल के लिए माँ को भी ठुकरा दिया, उसमें भी मजा नहीं रहा। क्योंकि धुन पढ़ाई में लग गयी। धुन में ही है मजा। जहाँ भी धुन लगी, वहीं से मजा आयेगा। पर वो मजा शुद्ध नहीं होगा। तो फिर पैसे में प्रतीत हुआ मजा।

रेगिस्तान के जल की तरह केवल प्रतीत हुआ, था नहीं। दूर चमकती हुई रेत हिरण को जल प्रतीत हुई। जल नहीं था, केवल प्रतीत

हुआ। इस तरह दुनिया में मजा है नहीं, प्रतीत होता है कहीं कहीं।
 'वस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं।' वाली बात है यह भी। मजा आत्मा में है, ढूँढ़ बाहर रहा है। एक आदमी नदी पर स्नान करने गया। पेड़ के नीचे कपड़े रखे और जल की ओर निहारा। जल में उसे एक हार दीख पड़ा, मोतियों का। उसने गोता लगाय, पर हार हाथ नहीं आया। शायद भूल हो गयी, सोचकर बाहर आया। फिर जल शांत हुआ तो हार दीख पड़ा। फिर कूदा, पर फिर खाली हाथ लौटना पड़ा। पानी में जाने कहाँ खो गया हार। फिर बाहर आया, फिर कूदा। अंत में हार कर कपड़े पहने और वापिस चल दिया। रास्ते में एक महात्मा मिल गये, उन्हें पकड़कर ले आया, कहा—
 ऐसे ऐसे बात है। महात्मा ने पानी में देखा तो जान गये, यह तो केवल प्रतीत हो रहा है यहाँ पर। फिर उन्होंने ऊपर देखा तो पेड़ पर हार लटक रहा था। आदमी ने भी ऊपर देखा तो बड़ा खुश हुआ, पेड़ पर चढ़ा और ले आया हार।

तो इस तरह कोई सद्गुरु रूपी भेदी साथ होगा तो बतायेगा कि मजा कहाँ से आ रहा है। केवल बतायेगा ही नहीं, उस मजे के साथ जोड़ भी देगा।

तो मनुष्य को बाहर प्रतीत हो रहा है मजा। फिर स्त्री में मजा प्रतीत हुआ और फिर बच्चे में। अब यदि स्त्री या बच्चा बीमार पड़ जाए तो उसके इलाज के लिए लाखों रूपये भी कुरबान हैं। वह स्त्री जब बूढ़ी हुई तो मजा निकल जाता है उसमें से भी। पुत्र कुपुत्र निकला तो मजा निकल गया उसमें से भी। नहीं होता तो अच्छा था। अरे, पहले उसी में तो ढूँढ़ रहे थे मजा। बहुत मजा ले रहे थे उसकी तोतली बोली सुनकर, उसकी शरारतें देखकर। अब कहाँ चला गया वो मजा।

यह क्या हाल हो गया। धुन भटक गयी बाहर। बाहर का मजा तो कष्ट ही देगा। जिन जिन चीजों में मजा ढूँढ़ा, या तो वो चीजें समाप्त हो गयीं या फिर उनसे अब मजा नहीं मिल रहा। बूढ़े हो गये तो मजा

समाप्त हो गये। लाल ग्रंथियों की ताकत खत्म हो गयी तो खाने का मजा नहीं रहा। अब आँखें भी कमजोर पड़ गयीं तो दृश्य का मजा भी नहीं रहा। कानों ने सुनना कम कर दिया तो संगीत का मजा भी नहीं मिल रहा। वीर्य बनना बंद हो गया तो विषय में भी मजा नहीं रहा। सूँघने की शक्ति कम हो गयी तो खुशबू का मजा भी समाप्त हो गया। अब धुन बेचारी क्या करे, कहाँ से मजा ले।

इस तरह से कुछ अंदर का भी मजा ले रहे हैं। पर आत्मानन्द इन दोनों से परे है। बाहरी मजे के धोखे में जीव क्यों फँसा?

इसमें मन की बहुत चालाकी थी। मन ने प्रतीत करवाया कि यह आनन्द वहाँ से मिला। इसे आत्मा समझ नहीं पा रही है। यह आनन्द नहीं था। था तो आत्मा का ही, पर पूर्ण रूप से नहीं था; इसमें माया मिली थी; इसमें मन मिला था, इसलिए यह केवल मज़ा था, आनन्द नहीं था। जब तक आत्मा मन-माया में है, पूर्ण आनन्द को नहीं पा सकती है। यही कारण है कि योगी भी जो आनन्द ले रहे हैं, वो पूर्ण आनन्द न होने के कारण मज़ा ही कहा जायेगा।

योगी लोग विभिन्न मुद्राओं द्वारा ध्यान करके बड़े मजे लेते हैं। कोई प्रकाश को अंदर में देखता है, कोई ज्योति को देखता है। कोई कहता है कि उसकी सुरति चढ़ी। सुरति का चढ़ना और उतरना भी तो माया का ही खेल है। साहिब कह रहे हैं—

ना कहूँ गया न काहूँ आया ॥

यह आत्मा अपने में नहीं आ रही है। तो योगी जो आनन्द ले रहा है, वो सूक्ष्म इंद्रियों का आनन्द है। इसलिए वो भी मज़ा है। पर वो स्थूल इंद्रियों के मजे से बहुत ऊपर है। कुछ धुनें सुनकर आनन्द महसूस कर रहे हैं।

जब घृणा के शब्द सुनते हैं तो घृणा आती है। जब कामुक शब्दों को सुनते हैं तो काम भावना भी आती है। ऐसे ही धुनें सुनने पर योगी को आनन्द आता है। ब्रह्मानन्द जी कह रहे हैं—

अनहद की धुन प्यारी साधो अनहद की धुन प्यारी रे ॥

आसन पद्म लगा कर, कर से मूँद कान की बारी रे ।
 झीनी धुन में सुरति लगाओ, होत नाद झनकारी रे ॥
 पहले पहले रिलमिल बाजे, पीछे न्यारी न्यारी रे ।
 घंटा शंख बंसरी वीणा ताल मृदंग नगारी रे ॥
 दिन दिन सुनत नाद जब निकसे, काया कंपत शरीरे ।
 अमृत बूँद झरे मुख माहीं, योगी जन सुखकारी रे ॥
 तन की सुध सब भूल जाते है, घट में होय उजियारी रे ।
 ब्रह्मानन्द लीन मन होवे, समझो बात हमारी रे ॥

‘अमृत बूँद झरे मुख माहीं, योगी जन सुखकारी रे ॥’ कुछ कहते हैं कि अमृत पान करते हैं। यह सब होता है। पर यह सब आनन्द नहीं है, मज़ा है। यह सब माया का खेल है। यह सब काल का जाल है। साहिब कह रहे हैं; बड़े सुंदर ढंग से कह रहे हैं—

मेरी नजर में मोती आया है ।
 करिके कृपा दयानिधि सतगुरु, घट के बीच लखाया है ॥
 कोई कहे हलका कोई कहे भारी, सब जग भर्म भुलाया है ।
 ब्रह्मा विष्णु महेश्वर हारे, कोई पार न पाया है ॥
 शारद शेष सुरेश गणेशहु, विविध जासु गुण गाया है ।
 नेति नेति कहि महिमा बरनत, बेदहुँ मन सकुचाया है ॥
 द्विदल चतुर घट अष्ट द्वादश, सहस्र कमल बिच काया है ।
 ताके ऊपर आप बिराजै, अद्भुत रूप धराया है ॥
 है तिल के झिलमिल तिल भीतर, ता तिल बीच छिपाया है ।
 तिनका आड़ पहाड़ सी भासै, परम पुरुष की छाया है ॥
 अनहद की धुन भँवर गुफा में, अति घनघोर मचाया है ।
 बाजे बजें अनेक भांति के, सुनि के मन ललचाया है ॥
 पुरुष अनामी सबका स्वामी, रचि निज पिण्ड समाया है ।
 ताकि नकल देखि माया ने, यह ब्रह्माण्ड बनाया है ॥
 यह सब काल जाल को फँदा, मन कल्पित ठहराया है ।
 कहहिं कबीर सत्यपद सद्गुरु, न्यारा करि दर्शाया है ॥

समझो, क्या कह रहे हैं। 'यह सब काल जाल को फँदा, मन कल्पित ठहराया है।' यानी ये अनहद धुनें काल का जाल है जबकि सत्यपद इससे परे है। उस स्थिति में सद्गुरु ही पहुँचा सकता है।

आनन्द तो वो है, जिसमें फिर गिरावट नहीं है; जो अटल है; जिसे पाने के बाद फिर पतित नहीं होना है; जिसे पाने के बाद फिर काम, क्रोध आदि में नहीं फँसना है। वो आत्मानन्द है, वो परमात्मानन्द है। आत्मा में ही तो परमात्मा का वास है। जब आत्मा अपने को जान लेती है तो जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वो सच्चा आनन्द है। जब वो साहिब में खो जाती है तो बात ही कुछ और हो जाती है। फिर वो स्थिति वर्णन से परे हो जाती है। वो संतों की स्थिति होती है। पर जब आत्मा अपने को जान लेती है, अपने को देख लेती है, तो उसे ही सच्चा आनन्द कहा जाता है।

धुन को ठीक जगह नहीं लगाया, इसलिए यह हाल हुआ। यदि इस धुन को गुरु चरणों में लगा दें तो मजा ही मजा है। गुरु की आत्मा चेतन है, उसमें धुन लगाने से आपकी आत्मा भी चेतन हो जायेगी। फिर आत्मा का ऐसा मजा मिलेगा, जो कभी समाप्त नहीं होगा। क्योंकि आत्मा परमानन्दमयी है, इसमें कहीं से आनन्द को आहुत नहीं करना है, लाना नहीं है। यह स्वयं ही आनन्द से लबालब है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी से कहते हैं कि पति के लिए पति प्यारा नहीं लगता, अपने लिए लगता है, पत्नी के लिए पत्नी प्यारी नहीं लगती, अपने लिए लगती है, पुत्र के लिए पुत्र प्यारा नहीं लगता, अपने लिए लगता है, ब्रह्म के लिए ब्रह्म प्यारा नहीं लगता, अपने लिए लगता है। सबके लिए सब प्यारे नहीं लगते, अपने लिए ही सब प्यारे लगते हैं। तो जिस आत्मा के लिए सब इतने प्यारे लगते हैं, वो आत्मा ही प्यारी है। इसलिए तू उसी को देख, उसी को सुन, उसी को जान।



आपा खोवे आपको चीहने

स्वामी विरजानन्द के पास स्वामी दयानन्द गये तो बाहर से ही द्वार खटखटाया। विरजानन्द ने अन्दर से ही पूछा—

विरजानन्द : कौन है ?

दयानन्द : यही तो जानने आया हूँ।

तो 'कौन हूँ!' क्या मोहन, सोहन आदि हूँ! ये संज्ञाएँ तो शरीर के कारण हैं। तो क्या शरीर हूँ! नहीं।

किसी ने बड़ा प्यारा कहा है—

मम देह है तू मानता, तब देह सै तू भिन्न है।

है माल के मालिक अलग, यह बात सबको मान्य है॥

कहा कि यदि शरीर को अपना मान रहे हो, आभास हो रहा है कि शरीर मेरा है तो स्पष्ट है कि तुम शरीर नहीं है, शरीर से भिन्न हो। कहा जाता है कि जब अमरदास तीन वर्ष के ही थे, तो एक दिन माँ ने गोद में बिठाया हुआ था। अमरदास ने अचानक पूछ लिया—

अमरदास : मैं कौन हूँ, माँ?

माँ : तू मेरा लाडला बेटा है।

अमरदास : कहाँ है तुम्हारा बेटा?

माँ (उसके सिर पर हाथ रखते हुए): यह है मेरा बेटा।

अमरदास : यह तो सिर है।

माँ (उसे गले लगाते हुए) : यह है मेरा लाल।

अमरदास : यह तो शरीर है। यह कब आया तुम्हारे पास?

माँ (आश्चर्य से): यह तो शादी के बाद आया मेरे पास।

अमरदास : उसके पहले मैं कहाँ था? शरीर तो मैं हूँ नहीं, क्योंकि जब यह नहीं था, मैं तब भी था। जब यह नहीं होगा, मैं तब भी हूँगा। मैं पूछ रहा हूँ कि वो मैं कौन हूँ?

तो 'मैं' जो है, वो 'मेरा' नहीं हो सकता। मेरा नाम सोहन है, मेरा बेटा, मेरा हाथ आदि तो मैं से अलग हैं। तो मेरा शरीर और मेरा मन का भी जो आभास हो रहा है, ये भी नहीं हो सकते न मैं।

'कौन हूँ' प्रश्न संसार का महत्वपूर्ण प्रश्न है। आखिर आप आत्मा ही तो हैं। हम सब एक बात कहते हैं, आत्मा अजर है, अविनाशी है, आनन्दमयी है। आत्मा की गुणवत्ता को देखते हैं। इसके लिए पाँच बातें कहीं। पहला तो आत्मा अविनाशी है, दूसरा यह चेतन है, तीसरा अमल है, चौथा सहज है और पाँचवां सुखरासी है। अगर देखें तो पाँच चीजें आत्मा में मिलती हैं। आत्मा अनाश्रित है, किसी पर आश्रित नहीं। जैसे शरीर तो आश्रित है, भोजन नहीं मिले, उसका अंत है, उष्मा नहीं मिले, तो भी अंत है, हवा नहीं मिले, तो भी अंत है। पर आत्मा का किसी देश, काल या अवस्था में नाश नहीं है। फिर यह चेतन है, जड़ नहीं है। फिर अमल है यानी इसमें काम, क्रोध आदि की गंदगी नहीं है। फिर सहज है, छल-कपट इसकी वृत्ति नहीं। और सुखरासी है, आनन्द से भरी पड़ी है। क्यों? क्योंकि यह परमात्मा का अंश है। इसलिए जो गुण परमात्मा में है, वो ही इसमें भी हैं। परमात्मा के गुण ही इसमें आए। यह साधारण नहीं है। हरेक चाहता है, आत्मा का ज्ञान हो और मुक्ति की प्राप्ति हो। ये दो चीजें भक्ति में स्थान रखती हैं।

आत्मा गयी कहाँ है? आत्मा का बोध क्यों नहीं हो रहा? जब भी व्यक्ति को देखें तो आत्मा का गुण नजर नहीं आ रहा। 'आत्मज्ञान बिना नर भटके, क्या मथुरा क्या काशी।' तो पहला दिख रहा है—व्यक्ति या शरीर या पंच भौतिक ढाँचा। हम इसी के लिए जिए जा रहे हैं। क्या यही

आत्मा है क्या ? किसी भी व्यक्ति की जानकारी शरीर द्वारा है। यह शरीर तो कभी नहीं हो सकता आत्मा। यह तो पराश्रित है, पर आत्मा ने इसे अपना मान लिया है। फिर दूसरा व्यक्तित्व नजर आ रहा है। कोई शुभ कर्म करने वाला है तो कोई ठग है, कोई पापी है तो कोई परमार्थी, कोई स्वार्थी। इन कर्मों को देखने से पता चलता है कि यह व्यवहार भी आत्मा का नहीं है। न तो व्यक्ति में आत्मा नजर आ रही है और न व्यक्ति के व्यक्तित्व में।

तो मैं, मेरा से अलग है, इसलिए मेरा शरीर, मेरा मन भ्रमांक है। यह नहीं हूँ। सच यह है कि 'मैं' भी नहीं हूँ। वो मैं, मेरा—दोनों से परे है। वहाँ न 'मैं' है, न 'तू'। यदि 'मैं' ही नहीं तो 'तू' कहाँ से आया।

'मैं' क्या है ? 'मैं' ही है—मन। उस चेतन सत्ता में मन मिला तो आत्मा नाम दिया, इसलिए जब तक आभास हो रहा है कि 'मैं' एक आत्मा हूँ, जब तक याद आ रहा है कि 'मैं' फलाना हूँ, तब तक मन है।

जो आप वर्तमान में अपने को अनुभव कर रहे हैं कि मैं हूँ, यही है मन, यह आत्मा नहीं, यह आपका स्वरूप नहीं है। इसलिए जब आप अपने देश में चलेंगे तो यह आभास समाप्त हो जायेगा कि फलाना हूँ। कुछ याद नहीं होगा। अपने को भुलाकर ही वहाँ जाना होता है। जब तक इस संसार का कुछ याद आ रहा है, तब तक मन मिला हुआ है। जब आत्मा वहाँ पहुँचकर अपने को देख लेती है, तो इस संसार का कुछ याद नहीं रहता। कौन था, यह भी नहीं। वहाँ जाते समय ही यह स्मृति गौण होती जाती है कि फलाना हूँ। पर जब तक यह याद आ रहा है कि फलाना हूँ, तब तक मन है यानी जब आत्मा शुद्ध रूप से अपने को देख लेती है तो याद नहीं रहता कि कौन हूँ। इस संसार का बोध तब समाप्त हो जाता है। फिर अपने आत्म-स्वरूप का बोध हो जाता है, सत्य का बोध हो जाता है और फिर परम सत्ता में समाकर हर तरह की 'मैं' समाप्त हो जाती है और परमानन्द में खो जाता है।

परमानन्द में 'मैं' का आभास बिलकुल भी समाप्त हो जाता है। संसार में आपको कभी बहुत सुख मिलता है तो आप थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं कि 'कौन हूँ'। यह अवस्था आती है। यदि सुख में आप अपनी सत्ता को थोड़ी देर के लिए भूल कर उसमें मग्न हो जाते हैं तो कल्पना कीजिए कि उस परमानन्द में 'मैं' का आभास कैसे होगा। इसलिए वहाँ न 'मैं' है न 'तू' है। कष्ट में ही मैं का अधिक आभास आपको होता है। आप नाटक, पिक्चर आदि में भी पायेंगे कि यदि आपको वो पिक्चर बहुत अच्छी लग रही है, आपको उसमें आनन्द मिल रहा है तो आप अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूलने लगते हैं, उसी में रमने लगते हैं। यह तुलना तो उस आनन्द से नहीं की जा सकती है, पर इस संकेत को समझिए। प्रेम में भी आप कभी अपने को भूल जाते हैं। वो तो प्रेम का सागर है। जब वहाँ पहुँचोगे तो आधे मिनट बाद भूल जाओगे कि कोई संसार भी था। अपने स्वरूप का बोध भी हो जायेगा, पर वहाँ ऐसा आनन्द होगा कि उसी में खो जाओगे और भूल जाओगे कि 'मैं' हूँ, परम आनन्द ही आनन्द है वहाँ, कोई दुख का निशान भी नहीं।

साधनाकाल में जब शरीर से प्राण ऊपर उठते हैं तो आभास होता है कि शरीर नहीं हूँ, पर जा रहा हूँ, यह आभास होता है, क्योंकि प्राणों में ही फँसा है। लगेगा कि मैं तो इतना छोटा हूँ। जब प्राणों से भी निकल शून्य शिखर पर पहुँचेगा तो भी आभास होगा कि हूँ। उस समय अपना वजूद नष्ट होता आभासित होगा। बस, उस अपने सांसारिक वजूद को, जो वास्तव में मन के धोखे से आपने अपना मान रखा है, को मिटा दिया तो वास्तव में 'मैं कौन हूँ', इसका ज्ञान हो जायेगा।

आपा खोवे आप को चीहने, तब मिले ठौर ठिकाना ।।

अपने स्वरूप को पा लोगे, उसे देख लोगे तो फिर कुछ ही देर में 'मैं हूँ' का आभास भी समाप्त हो जायेगा।

तो जीव, आत्मा आदि संज्ञाएँ मनुष्य को समझाने के लिए दी

गयीं। संतों ने चेतन सत्ता को हंस कहा, जिसे जहाँ से छूटना है। आत्मा भी कहना पड़ा ताकि दुनिया सरलता से समझ सके। जो आप वर्तमान में अपने को अनुभव कर रहे हैं कि 'मैं' हूँ, यही है मन। जब तक यह आभास रहेगा कि 'मैं हूँ', समझो मन है। जब हंस में से मन निकल जाता है और हंस अपने देश चला जाता है तो यह आभास समाप्त हो जाता है कि 'मैं हूँ'। वहाँ से पहले जब तक आभास हुआ कि 'मैं' तो मन नहीं हूँ, कुछ और (आत्मा) हूँ, तो भी मन है, क्योंकि आभास हो रहा है कि 'मैं' हूँ। वर्तमान में तो मन ही मन है, चेतन सत्ता गुम है। जब आभास हुआ कि मन नहीं हूँ, कुछ और हूँ, जिसे आत्मा कहा गया या जिसे जीव कहा गया तो भी मन मिला है, पर थोड़ा सा। इसलिए जब चेतन सत्ता मन की सीमा से परे अपने देश चली जाती है तो यह आभास समाप्त हो जाता है कि 'मैं' फलाना हूँ, कुछ याद नहीं रहता। अपने को भुलाकर ही वहाँ जाते हैं और वहाँ परमानन्द में खोकर भी अपने पाए हुए आपे की सुध भूल जाती है.....परम....परम...परम आनन्द में खो जाना होता है।



पुरुष कहो तो पुरुषहि नाही। पुरुष हुवा आपा भू माही॥
 शब्द कहो तो शब्दहि नाही। शब्द होय माया के छाही॥
 नाम कहो तो नाम न जाका। नाम धरा जो काल तिहि ताका॥
 है अनाम अक्षर के माहीं। निह अक्षर कोइ जानत नाही॥
 धर्मदास तहँ बास हमारा। काल अकाल न पावे पारा॥
 ताकी भक्ति करे जो कोई। भव ते छूटे जन्म न होई॥

आपा पौ आपहि बँध्यौ

यह आत्मा अनादिकाल से यहाँ भटक रही है। बड़े लंबे समय से यह यहाँ पर है।

जीव पड़ा बहु लूट में, नहीं कुछ लेन न देन ॥

क्या हमारी आत्मा का जन्म-मरण से कोई संबंध है! अगर हम विचारकर देखें तो शास्त्र भी एक बात कह रहे हैं कि आत्मा बिना मतलब के माया में फँसी है। आखिर कारण क्या है? आत्मदेव की गलती क्या है? आप आज से यहाँ नहीं हैं, अनन्त जन्म आपके हो चुके हैं। इसकी पुष्टि धर्म-ग्रंथ कर रहे हैं। चिंतन करना। वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन! मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं, मुझे वे सब याद हैं, पर तुम्हें याद नहीं हैं। फिर कहा कि जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है, ऐसे ही यह आत्मा भी कर्मानुसार पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर को धारण करती है। इसका मतलब है कि कर्म ही आत्मा के जन्म-मरण का कारण है। यानी आत्मा कर्मानुकूल ही जन्म-मरण को प्राप्त कर रही है। बार-बार जन्म-मरण का कारण कर्म है। अब सवाल उठा कि कर्म से आत्मा का क्या संबंध है?

सबसे पहले देखते हैं कि मनुष्य कर्म क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है, कर्म का अभीष्ट क्या है। **‘देह धरे का दण्ड है, भुगतत हैं सब कोय। ज्ञानी भुगतत ज्ञान से, मूरख भुगतत रोय ॥’** कर्म का अभीष्ट है—यह देही। जितने भी कर्म हैं, घूम-फिरकर हरेक कर्म के पीछे एक ही

बात निकलेगी कि शरीर के पोषण और निर्वाह के लिए मनुष्य कर्म कर रहा है। नौकरी क्यों कर रहा है? धन कमाने के लिए और धन से तात्पर्य शरीर का सुख है। अच्छा मकान बना रहा है। क्यों बना रहा है? शरीर के लिए। ए. सी. लगा रखा है तो क्यों? इस शरीर को गर्मी न लगे। कर्म का अभीष्ट यह देही है। हर मनुष्य शरीर के पोषण के लिए कर्म कर रहा है। निचोड़ निकालोगे तो हर कर्म शरीर के लिए है। यानी गठान यह है कि अपने को शरीर मान लिया। **‘जड़ चेतन हैं ग्रंथि पड़ गई। यद्यपि मिथ्या छूटत कठिनाई ॥’** आखिर गठान कहाँ है? आत्मा और शरीर की कैसी गठान है? क्यों नहीं खुल रही? किसी को हथकड़ी लगी हो तो आप उसे बंधन से छुड़ाने के लिए हथकड़ी खोल देते हैं। आत्मा का बंधन खोलना है तो पहले देखना होगा न कि गठान कहाँ है। पहली बात तो यह है कि आत्मा को गठान लग ही नहीं सकती है।

आत्म ज्ञान की बात बताता हूँ। गरुड़ जी विष्णु जी के वाहन हैं। जैसे गणेश जी की सवारी चूहा है, कार्तिक की सवारी मोर है, ऐसे ही विष्णु जी की सवारी गरुड़ जी हैं। **गरुड़ जी ने विष्णु जी से प्रार्थना की, कहा कि मुझे आत्मा का ज्ञान दो। विष्णु जी ने कहा कि आत्मा का ज्ञान चाहते हो तो काकभुशुण्डी जी के पास जाओ। आप सोचें यहाँ पर।** जैसे कोई इतिहास का प्रोफेसर होता है, उससे कोई बच्चा गणित का ऐसा प्रश्न पूछे जो उसे न पता हो तो वो कहता है कि गणित के प्रोफेसर के पास जाओ, उनसे पूछो। ऐसे ही गणित के प्रोफेसर से यदि इतिहास का प्रश्न कोई पूछे, जो उसे न पता हो तो वो इतिहास वाले प्रोफेसर के पास भेजता है। ऐसे ही विष्णु जी ने गरुड़ जी को काकभुशुण्डी जी के पास भेजा। क्योंकि वे आत्म ज्ञान के विशेषज्ञ थे, यह बात विष्णु जी को पता थी। काकभुशुण्डी जी पहले साहिब के शिष्य थे। गरुड़ जी भी रहे।

तो गरुड़ जी आत्म-ज्ञान पाने के लिए काकभुशुण्डी जी के पास

गये। उन्होंने कई सवाल पूछे। पूछा कि आत्मा क्या है, समझाओ? पूछा कि आप आत्मज्ञानी हो तो कौवे क्यों हो? काकभुशुण्डी जी ने कहा कि पिछले जन्म में मैंने एक बार गुरु का अपमान किया था, मुझे अहंकार था कि मुझे गुरु से अधिक ज्ञान है, एक बार जब गुरु जी आए तो सबने प्रणाम किया, पर मैंने नहीं किया। मैं शिव मंदिर में था तो शिवजी ने मुझे शाप दिया, कहा कि मेरे स्थान पर गुरु की निंदा की, जा कौवा हो जा। तब मुझे गुरु का ध्यान आया, मैं उनके पास गया और कहा कि शिवजी का वचन तो मिट नहीं सकता, पर आप कृपा करो। गुरु ने पूछा कि क्या चाहते हो? मैंने कहा कि मुझे कौवे की योनि में भी आत्म-ज्ञान रहे, मेरा आत्मज्ञान न मिटे।

तो फिर गरुड़ जी ने कहा था कि कई युग हो गये, अब तो यह शरीर छोड़ो। काकभुशुण्डी जी ने कहा कि मुझे यह शरीर बड़ा ही प्यारा है, क्योंकि इसमें आकर मुझे बड़ा ज्ञान मिला है, इसलिए मैं इसे नहीं छोड़ना चाह रहा हूँ। काकभुशुण्डी ने उस शरीर में बैठकर कई सृष्टियाँ देखी थीं।

तो आत्म ज्ञान की बात हुई, काकभुशुण्डी जी ने कहा—

सुनो तात यह अकथ कहानी।

समझत बने न जाय बखानी॥

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

चेतन अमल सहज सुखरासी॥

सो माया वश भयो गुसाईं।

बन्धयो जीव मरकट की नाईं॥

यह 'तात' बड़ा प्यारा शब्द है। 'तात' शब्द किसी के लिए भी इस्तेमाल हो सकता है। गुरु के लिए भी, शिष्य के लिए भी, प्रीतम के लिए भी, पुत्र के लिए भी। तो कहा— 'सुनो तात यह अकथ कहानी।' अकथ यानी कही न जा सकने वाली। 'समझत बने न जाय बखानी।'

कहा कि समझ लेना, वर्णन नहीं कर पाऊँगा। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' यह आत्मा मामूली नहीं है। ईश्वर की अंश है, अविनाशी है। इसलिए तो मैं आपसे रंग रूप से परे होकर बात कर रहा हूँ। जिसे भी आत्म-ज्ञान हो जाता है, सबमें एक आत्मा देखता है।

आप बहुरूपिये को देखते हैं कि वो कभी कुछ बनकर आता है, कभी कुछ। कभी वो हनुमान बनकर आपके सामने आता है, कभी कृष्ण बनकर, कभी सिकंदर बनकर। उसका काम है आपको हँसाना। तो जो वहाँ के लोग हैं वो जानते हैं कि यह तो फलाना है, कहते हैं कि वो आ गया। यदि उसका नाम रामपाल है तो वो कहते हैं कि देखो, रामपाल आ गया, हनुमान उन्हें बाद में दिखता है। इस तरह आत्मज्ञानी सबसे पहले सबमें एक आत्मा देखता है।

फिर यह 'चेतन अमल सहज सुखरासी ॥' यह चेतन है। यानी सजीव है। शरीर तो जड़ है, पर यह जड़ चीज़ नहीं है। फिर यह अमल है। यानी मल रहित है। इसमें कोई भी गंदगी नहीं है। शरीर तो गंदगी से भरा है, बना भी गंदगी से ही है। पर आत्मा अत्यन्त निर्मल है। बड़ी ही प्यारी है, गंदगी से परे है। फिर सहज है। यानी यह छल-कपट से भी परे है। इंसान में तो छल-कपट है, यह मन का गुण है, आत्मा का नहीं। आत्मा छल-कपट से परे है। नितान्त ही सहज है। फिर यह आनन्दमयी है, आनन्द से भरी पड़ी है। इसमें कहीं से भी आनन्द को आहुत नहीं करना है, इसमें स्वतः ही आनन्द भरा पड़ा है। जैसे शरीर में तो आनन्द को आहुत करना है। पंच इंद्रियों के आनन्द को आश्रय की ज़रूरत है। पर आत्मा निराश्रित है। आँखों का आनन्द लेने के लिए सुंदर दृश्य की ज़रूरत है, कानों का आनन्द लेने के लिए शब्द की ज़रूरत है, जिह्वा का आनन्द लेने के लिए अच्छे-2 खाद्य पदार्थों की ज़रूरत है, त्वचा का आनन्द लेने के लिए स्पर्श चाहिए, नासिका का आनन्द लेने के लिए खुशबू वाले पदार्थ चाहिए। यानी पंच इंद्रियाँ आश्रित हैं किसी पर। नहीं

तो नहीं मिल पायेगा आनन्द। स्पर्श नहीं मिला तो त्वचा का आनन्द नहीं मिलेगा, सौंदर्य न मिला तो आँखों का आनन्द न मिलेगा, अच्छी-अच्छी खाने की चीज़ें न मिलीं तो जिह्वा इंद्रि का आनन्द नहीं मिलने वाला, शब्द न सुनाई पड़ा तो कानों के आनन्द से वंचित रह जाओगे, खुशबू वाले पदार्थ न होंगे तो नाक का मज़ा नहीं मिल सकेगा। पर आत्मा को ऐसे आनन्द को कहीं से बुलाना नहीं है, इसमें स्वतः ही प्रस्फुटित हो रहा है।

आत्मा को किसी चीज़ की भी ज़रूरत नहीं है। आत्मा को किसी स्वाद से कोई मतलब नहीं है, किसी शब्द से कोई मतलब नहीं है, किसी सुगंध-दुर्गंध से कोई मतलब नहीं है, किसी इंद्रि से कोई सरोकार नहीं है। इंद्रियाँ न होने से विषय-विकार नहीं हैं। इसमें मन का अभाव न होने से चाह भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है। तो फिर क्या पागल है? नहीं, बुद्धि से परे है। इसलिए इसका न कोई मित्र है, न शत्रु। फिर यह निःतत्त्व है। इसके कारण सोने-जागने से परे है। 'मन बुद्धि चित अहंकार न कहिये, ज्यों का त्यों कर जाना ॥' यह शब्द, रूप, रस से भी परे है। कोई भी तत्त्व आत्मा को प्रभावित नहीं कर सकता है।

एक समय था जब मैं रोटी नहीं खाता था, सोता भी नहीं था। एक आदमी रोटी खा रहा था तो मैंने कहा कि तुझे नहीं पता है कि यह तू नहीं खा रहा है। वो हँस पड़ा। वो बड़ी ज़ोर से हँसा, सबको कहने लगा कि यह पागल हो गया है। मैं चुप हो गया, मैंने कहा कि दुनिया को सत्य कहो तो पागल कहती है। बारीक बात करनी ही नहीं है। शास्त्रों में भी आता है कि पहले आदमी भोजन नहीं खाता था। आत्मा रह लेगी तो भी, एक विधि है।

ऐसी आत्मा मन-माया के बंधन में आ गयी है।

सो माया वश भयो गुसाई, बन्धयो जीव मरकट की नाई ॥

कहा कि यह तोते और बंदर की तरह बँध गयी है। जैसे बंदर कहीं बँधा नहीं है। वो तो खुद अपने को फँसाए हुए है। तोते को किसी

ने नहीं पकड़ा होता, पर वो खुद ही नलनी को पकड़े रखता है, सोचता है कि किसी ने पकड़ लिया। ऐसे ही आत्मा को किसी ने नहीं पकड़ा है, आत्मा खुद कह रही है मेरा-मेरा। एक मन की अनुभूति है, एक आत्मा की। जो मेरा-मेरा कर रहे हैं, यह है गठान।

दो चीजों में यह आत्मा फँसी है। किसी भी व्यक्ति को देखें तो दो चीजें नज़र आती हैं—एक तो व्यक्ति और दूसरा उसका व्यक्तित्व। व्यक्तित्व में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आते हैं। इन्हीं में आत्मा फँसी है। इसलिए आप कहते भी हैं कि मन और माया में फँसे हैं। माया यह शरीर और मन यह व्यक्तित्व है।

यह शरीर तो एक पिंजड़े की तरह है, जिसे आत्मा ने अपना मान रखा है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा।

पाँच तत्त्व का अधम शरीरा॥

संसार के जितने जीव हैं, उन सबका शरीर पाँच तत्त्वों से बना है। मनुष्य में ये पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह शरीर अधम है, नीच है, गन्दा है। इस शरीर को गन्दा कहा गया है। आखिर क्यों ? यह पूरी सृष्टि मैथुन सृष्टि कहलाती है, यानी स्त्री और पुरुष के मेल से ही सब जीवों की उत्पत्ति होती है। माँ के रज और पिता के वीर्य से हमारा यह शरीर बना है; फिर यह निर्मल कैसे हो सकता है! फिर यह अच्छा कैसे हो सकता है! यह है ही गन्दगी का ढेर। इसके रोम-रोम में गन्दगी फैली हुई है। बाहर से हमें यह बड़ा साफ़ दिखाई दे रहा है, बड़ा सुन्दर दिखाई दे रहा है, पर यथार्थ में ऐसा नहीं है। हम बार-बार इसे नहलाकर साफ़ रखने का प्रयत्न करते हैं। इत्र, क्रीम तथा खुशबूदार चीजें लगाकर इसे सुन्दर और स्वच्छ रखने का प्रयत्न करते रहते हैं, पर थोड़ी ही देर में यह पुनः बदबूदार और गन्दा दिखने लगता है; क्योंकि यही इसकी

वास्तविकता है। मल-मूत्र के द्वारों से महा गन्दगी बह रही है, मुँह से लार टपक रही है, कानों से खूट निकल रही है, नासिका से नाक बह रही है, आँखों से कीच निकल रही है, रोम-रोम से बदबूदार पसीना निकल रहा है। सुन्दरता का तो कोई चिन्ह दिख ही नहीं रहा। इसके भीतर जो आत्म तत्त्व बैठा हुआ है, उसी के फलस्वरूप इसमें थोड़ी बहुत चमक दिख रही है। आत्मा को जब यह शरीर छोड़ना पड़ जाता है, उसके दो दिन बाद तक यदि इसे पड़ा रहने दिया जाए तो इसकी असलियत का पता चल ही जाता है। इसलिए बहुत ही गन्दा है, यह शरीर। इसी तरह यह दुनिया भी है। यह दुनिया, जो हमें इतनी हसीन लग रही है, वास्तव में यह ऐसी है नहीं। कुछ भी अच्छा नहीं है यहाँ; सब गन्दगी के ढेर की तरह है। यह सब हमें अच्छा क्यों लग रहा है? हमने कभी न सोचा होगा! इसमें मन की बड़ी ताकत है। इस दुनिया को झूठा भी कहा गया है। संतों की नज़र में यह दुनिया पागलखाने की तरह है। पागलखाने में रहने वाले पागल अपने को बड़ा समझदार समझते हैं। अपनी बेवकूफी भरी हरकतों के कारण वे कई बार पिटे जाते हैं, पर सब हँसते-रोते सह ही लेते हैं। उनकी हरकतें देखकर आम आदमी को तो उन पर हँसी ही आती है, पर जो कुछ अच्छे भले आदमी होते हैं, वे उनकी यह हालत देखकर दुखी होते हैं। इसी तरह ज्ञानी संत-जनों को संसार रूपी पागलखाने में बार-बार चौरासी की चक्की में पिसे जाने वाले जीवों की इस हालत पर तरस आता है। हम सब अपने बच्चों को खुश देखना चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि उन्हें कोई कष्ट मिले। इसी तरह सब जीव परम-पुरुष (साहिब) के अंश हैं। वो साहिब भी अपने जीवों को कष्ट में नहीं देखना चाहता; वो हमें यहाँ से छुड़ाना चाहता है। अपने जीवों को दुःखी देखकर साहिब भी दुखी होता है। 'चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।'

जीवात्मा इस पागलखाने में खो गया। वो अपनी चाल भूल गया और पागलों की -सी हरकतें करने लगा, पागलों की चाल चलने लगा। आओ देखते हैं, वो कैसी हरकतें कर रहा है। मनुष्य का शरीर पाँच तत्त्वों से बना है - जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश। इसी में पच्चीस प्रकृतियाँ हैं। जैसे जल तत्त्व, खून, पसीना, थूक पेशाब, वीर्य अग्नि तत्त्व हमारे शरीर में पाँच रूपों में स्थित है- भूख, प्यास, निद्रा, आलस्य तथा जम्भाई। वायु तत्त्व हमारे शरीर में पाँच रूपों में स्थित है- सिकुड़ना, पसरना, बोलना, सुनना और बल लगाना। पृथ्वी तत्त्व में हाड़, मांस, त्वचा, रोम तथा नाखून आते हैं और आकाश तत्त्व शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्श के साथ हमारे शरीर में विद्यमान है। इस प्रकार ये पाँच तत्त्व पच्चीस रूपों में हमारे शरीर में विद्यमान हैं।

जीवात्मा अपने धर्म को भूल गया। शरीर से उसका कोई संबंध न कभी था, न है और न कभी हो सकता है, क्योंकि शरीर जड़ है जबकि जीवात्मा चेतन है, पर जीवात्मा अपने स्वरूप को भूलकर शरीर की इन प्रकृतियों के पालन में ही खो गया है। जैसे सोना जीवात्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा की वृत्ति नहीं है। यह तो अग्नि तत्त्व के कारण है, पर आत्मा भूलवश इसे अपना धर्म मान रही है। बोलना वायु तत्त्व है, आत्मा की वृत्ति नहीं, पर आत्मा अपने को शरीर मान बैठी है। सारा झंझट यहीं से शुरू हुआ है और आत्मा अपने धर्म को भूलकर इस अधम शरीर की वृत्तियों के पालन में मग्न हो गयी।

हंसा तू तो सबल था, अटपट तेरी चाल।

रंग-बिरंग में खो गया, अब क्यों फिरत बेहाल ॥

जीवात्मा की चाल बड़ी अटपट थी, पर जब से इसने शरीर को धारण किया, यह दुःखी है। यह अपनी चाल को ही भूल गई।

क्यों भूली? क्योंकि इसने अपने को शरीर माना। सारा दुःख यहीं से प्रारम्भ हुआ। यदि यह अपने को शरीर न माने तो कोई झंझट, कोई दुःख ही नहीं है। यह शरीर तो एक पिंजरा है, जिसमें ऐसी निर्मल आत्मा को भ्रमित करके बाँधा गया है। लेकिन आत्मा को तो कोई बाँध ही नहीं सकता। यह बँधने वाली वस्तु है ही नहीं। फिर यह कैसे बंधन में है ?

आपा पौ आपहि बँधयौ ।

जैसे स्वान काँच मंदिर में भरमति भूँकि मरो ॥

जो केहरि बपु निरखि कूप-जल प्रतिमा देखि परो ।

ऐसेहि मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि लरो ॥

मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर-घर नटत फिरो ।

कहै कबीर नलनी कै सुगना तोहि कौन पकरो ॥

इस आत्मा ने स्वयं अपने को बँधा मान लिया, यानी यह स्वयं बंधन में आ गयी। जैसे काँच के मकान में रहने वाला कुत्ता अपने ही अनेक प्रतिबिम्बों को दूसरे कुत्ते समझकर भौंका करता है, जैसे सिंह कुँए के जल में अपनी परछाई को दूसरा सिंह समझकर कूद पड़ा था, जैसे पहाड़ी रास्ते पर चलने वाला हाथी अपने ही दाँतों से लड़ने लगता है, जिस प्रकार बन्दर चने की मुट्ठी भर लेता है। खाली हाथ संकरे घड़े में चला गया, पर भरा होने से जब वो बाहर नहीं आ पाता तो बन्दर चिल्लाने लगता है, अपने सगे-संबंधियों को पुकारने लगता है— भाई ! मुझे छोड़ाओ; किसी ने पकड़ लिया है। उसे किसी ने नहीं पकड़ा। चने छोड़ दे तो हाथ बाहर आ जाए। जैसे तोता नलनी को पकड़ कर अपने को बँधा मानने लगा। शिकारी लोग तोते को पकड़ने के लिए एक नलनी विशेष तौर पर तैयार करते हैं, उस पर एक शीशा और फल बाँध कर किसी पेड़ की टहनी पर बाँध देते हैं। तोता आता है, नलनी पर पाँव रखता है, वज़न से

नलनी घूम जाती है। तोते के पाँव ऊपर की ओर हो जाते हैं, शरीर नीचे। शीशा वहाँ पर लगा है; अपना ही रूप उसमें देखता है; सोचता है, किसी दूसरे तोते ने पकड़ लिया है; चोंच मारने लगता है। इतने में शिकारी आता है, उसे पकड़ लेता है। वो चाहता तो उड़ सकता था। नलनी को छोड़ देता तो आज़ाद था। किसने पकड़ा था उसे! साहिब कहते हैं कि इसी तरह से जीव बँधा है। इसने दुनिया पकड़ रखी है, इसने ही माया पकड़ रखी है। माया इसे पकड़ ही नहीं सकती। यह खुद पकड़ा हुआ है। यह शरीर को 'मैं' मान कर पकड़ा हुआ है।

इस माया रूपी शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति में मग्न हैं। इन्होंने आत्मा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। आत्मा इनमें रम गया है और स्वयं से दूर हो गया है। हमारी आँखें किसी फूल को देखती हैं। यह आकर्षण आँखों द्वारा मन को हुआ। आत्मा क्यों आकर्षित हुई? इसे तो कोई आकर्षित नहीं कर सकता। फिर ऐसा क्यों हुआ? आओ इस पर विचार करते हैं। कभी-कभी हम खाने की कोई स्वादिष्ट चीज़ देखते हैं। जिह्वा उसे खाने को ललचाती है, मुँह से लार टपकनी शुरू हो जाती है। यह सब काम अपने आप अन्दर ही अन्दर होता है। इस खेल को खेलने वाला मन पर्दे के पीछे से सभी इन्द्रियों को उत्तेजित करता है। आत्मा इस खेल को समझ नहीं पाती है। सभी इन्द्रियाँ आपस में मिली हुई हैं। जैसे देखने वाली इन्द्री तो आँख थी, मुँह ने तो देखा नहीं, फिर मुँह से लार क्यों टपकी? मुँह में पानी क्यों आया? इसका सीधा सा मतलब है कि सब इन्द्रियों का आपस में समझौता है। ये आपस में मिली हुई हैं। आत्मा का इन इन्द्रियों से कोई संबंध नहीं है। आत्मा तो कुछ खाती नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा कुछ खाने को

कह रही है। यह बिल्कुल गलत है। हमारी आत्मा कुछ भी नहीं खाती। इसमें मुँह ही नहीं है, फिर क्या खायेगी! स्थिति यह है कि जब-जब, जो-जो इन्द्री अपने स्वार्थ की ओर उन्मुख होती है, तब-तब आत्मा भूलवश उतनी देर के लिए अपने को वो इन्द्री मानने लगती है।

इस तरह यह तो मन और इन्द्रियों का खेल है, जिसे आत्मा पागलों की तरह खेल रही है। आत्मा मन के कहने पर चल रही है। आखिर क्यों? क्योंकि यह अपने को नहीं जान पा रही है। इसलिए मन से आत्मा को अलग देखना आत्म-साक्षात्कार है। इससे बड़ा दुनिया में कोई काम नहीं है। आत्मा अपना धर्म, अपना गुण भूल गई है। आत्मा सोती-जागती नहीं, भूख-प्यास भी इसे लगती नहीं, न यह स्त्री है, न पुरुष, न इसकी कोई माँ है, न बाप। फिर हम सब रिश्ते-नाते कह रहे हैं। ये कौन हैं? मन से ही सब रिश्ते-नाते हैं, मन से ही पूरी दुनिया है, मन से ही जगत का सब व्यवहार है। दुनिया में जो कुछ भी कर्म मनुष्य कर रहा है, सब झूठ है, क्योंकि इन सब कर्मों को करने की प्रेरणा, दिशा मन दे रहा है। मन की आज्ञानुसार ही मानव कर्म कर रहा है। जैसे-जैसे मन कह रहा है, वैसा-वैसा आत्मा किए जा रही है। मन कहता है पानी पीना है, घर जाना है, किसी से बात करनी है, मन ही नाराज़ हो जाता है और फिर मन ही खुश हो जाता है। मन ने अपनी शक्ति से अपना गुण आत्मा पर लगा दिया है। कभी हम खेतीबाड़ी के लिए सोचते हैं, कभी बाल बच्चों की सोचते हैं। आत्मा के बारे में, आत्मा के कल्याण के लिए, परमात्मा के विषय में ज़्यादा नहीं सोच पाते हैं। यदि थोड़ा बहुत कभी-कबार सोच भी लेते हैं तो केवल इसलिए कि आत्मा में एक स्वाभाविक कशिश है। वो परमात्मा की ओर खिँचती है, पर मन इसमें आड़े आया हुआ है। इसलिए जब आत्मा

अपने को जान जाएगी तब यह मन की कोई बात ना मानेगी। स्वयं से परिचित न होने के कारण ही यह मन की आज्ञा में है। मन आत्मा को पागलों की भांति नचा रहा है। जब से आत्मा शरीर में आई, शरीर में ही खो गयी, उसे अपना कहने लगी। शरीर की सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने स्वार्थों में मग्न हैं। सभी इन्द्रियों अपना-अपना मज़ा लेना चाहती हैं। संसार के लोग इन्हीं इन्द्रियों के मजे में फँसे हुए हैं। इसलिए वे सच्चे आनन्द से बहुत दूर हैं। यह मज़ा, जो इन्द्रियाँ से संबंध रखता है, मन को मिलता है, पर इन्द्रियों के प्रत्येक मजे के पीछे एक सज़ा भी छिपी रहती है, जिसे आत्मा युगों से भोग रही है। आओ देखते हैं, कौन सी सज़ा छुपी होती है, इनके पीछे !

आँखों के मजे की सज़ा: आँखें सौन्दर्य का मज़ा लेती है। सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखकर खुश होती हैं। पतंगे की आँखें इस मजे की कायल हैं। वो दीपक की लौ से प्रेम करता है। इस मजे के लिए वो उसकी तरफ जाता है। जब पास जाता है तो उसके पंख जलते हैं, पर पतंगा फिर भी पीछे नहीं हटता और बार-बार उसकी तरफ जाता है, क्योंकि वो आँखों का मज़ा लेना चाहता है। लेकिन आँखों के मजे के पीछे वो पतंगा अंत में जलकर प्राण खो देता है।

कान के मजे की सज़ा: इस इन्द्रि का मज़ा लेता है-मृगा। वो बाँसुरी की आवाज़ सुनने का बड़ा शौकीन है। जैसे कुछ लोग रेडियो सुनते हैं, विविध प्रकार के गाने सुनते हैं। कुछ तो वाक्मैन को कानों के साथ चिपकाए हुए घूमते हैं। वास्तव में वो कान का मज़ा लेते हैं। इसी तरह वो मृगा बाँसुरी सुनने का मज़ा लेता है। वो आम हिरण से कुछ अलग होता है। उसकी नाभि में एक कस्तूरी है। जो बड़ी कीमती है।

शिकारी लोग मृगा को पकड़ने के लिए ज़मीन में दो बाँस गाड़ते हैं। उस पर कील ठोंककर एक फर्जी बाँस रख देते हैं। स्वयं

पर्दे के पीछे किसी स्थान पर छिपकर बाँसुरी बजाना शुरू कर देते हैं। बाँसुरी की आवाज़ कानों में पड़ते ही मृगा का मन खुश हो जाता है। वो पहाड़ी से नीचे उतरता है, क्योंकि वो पास आकर बाँसुरी सुनना चाहता है। मृगा की एक विवशता है कि वो बैठ नहीं सकता है। यदि कभी गलती से वो बैठ जाए तो उठ नहीं सकता, क्योंकि उसकी टाँगों में जोड़ नहीं हैं। इसलिए वो नींद भी खड़े-खड़े ही किसी चट्टान आदि से टिककर ही पूरी करता है। अब उधर शिकारी बाँसुरी बजाता जाता है और मृगा पास आता-आता मस्त होता जाता है। फिर बिल्कुल पास आकर अपने दोनों पैर उस फर्जी बाँस पर रख देता है, क्योंकि वो मजे से बाँसुरी का आनन्द लेना चाहता है। फर्जी होने से बाँस गिर पड़ता है और साथ ही मृगा भी गिर पड़ता है। अब शिकारी बाँसुरी बजाना बन्द कर देता है और उसके पास आ जाता है। पेट फाड़कर कस्तूरी निकाल लेता है और मांस बेच देता है।

नाक के मजे की सज़ा: नाक का मज़ा लेता है-भँवरा। वो कमल के फूल से प्यार करता है, क्योंकि वो उसकी भीनी-भीनी खुशबू का मज़ा लेता है। वे उसी में मस्त रहना चाहता है। जैसे हम इत्र, फूल आदि जो खुशबूदार चीज़ें लगाते हैं, वो सब इस नाक इन्द्री का मज़ा है। इसी तरह भँवरा मतवाला रहता है। शाम होने लगती है और भँवरा कमल के भीतर उसकी सुगन्धि लेने में मस्त होता है। उधर अपनी प्रवृत्तिनुसार कमल का फूल धीरे-धीरे बन्द होने लगता है। भँवरा इस बात को समझता है कि फूल बन्द हो रहा है और बन्द होने से पहले उसे वहाँ से निकलना होगा, पर वो सोचता है कि थोड़ी-सी महक और ले लेता हूँ; बाद में उड़ूँगा। फूल अब धीरे-धीरे काफी हद तक बन्द हो जाता है। भँवरा और मज़ा लेना चाहता है। वो माया के मजे में इतनी बुरी तरह फँस चुका होता है कि वहाँ

से निकलना नहीं चाहता है। इसलिए वो सोचता है कि अभी तो आकाश दिखाई दे रहा है; बस थोड़ी ही देर में उड़ जाऊँगा। जैसे स्कूल जाने के लिए उठने से पहले बच्चे थोड़ी देर नींद में मस्त रहना चाहते हैं, क्योंकि वो नींद का मज़ा ले रहे होते हैं, इसलिए उन्हें बार-बार उठाना पड़ता है। इसी तरह वो भँवरा भी उड़ने से पहले कमल की महक का मज़ा थोड़ी देर लेना चाहता है, पर उसे बार-बार समझाकर वहाँ से बाहर निकालने वाला कोई नहीं होता, इसलिए कमल का फूल धीरे-धीरे बिल्कुल बन्द हो जाता है और भँवरा शराबी की भांति बीच में ही मस्त हो जाता है। सुबह जब फूल पुनः खिलता है तो भँवरा मर चुका होता है, क्योंकि उसे आक्सीजन नहीं मिल पाती है। इसलिए भँवरा नाक का मज़ा लेते-लेते मर जाता है। यह था नाक का मज़ा और यही है उसकी सज़ा।

जीभ के मज़े की सज़ा: मछली की जीभ बड़ी तेज़ है; वो हर समय कुछ न कुछ खाने को ललचाती रहती है। जैसे हम भी कभी छोले-भटूरे, कभी हलवा-पूरी, कभी रसगुल्ले, कभी समोसे, कभी जलेबी। यह सब क्या है? यह सब इस जिह्वा इन्द्री का मज़ा है।

मछली को पकड़ने के लिए मछुआरा काँट में आटा, मांस आदि लगाकर पानी में डालता है। मछली इस बात को समझती है कि यह आटा उसे खिलाने के लिए नहीं है बल्कि उसे पकड़ने के लिए है, पर उसकी जीभ बड़ी तेज़ है। वो उसका मज़ा भी नहीं छोड़ पाती, इसलिए वो सोचती है कि चुपके से खाकर निकल जाऊँगी। लेकिन उसे यह नहीं मालूम है कि वो काँटा दो-मुँहा है, जो दोनों ओर से फँसेगा। वो तो चालाक बनकर जाती है, पर शिकारी और भी चालाक है, इसलिए वो पकड़ी जाती है और जीभ के स्वाद के लिए अपने प्राण खो देती है।

इस दुनिया की हाट में जो कुछ भी है, वो सब माया का

खेल है, आत्मा को परमात्मा से दूर करने के लिए है। माया ने यहाँ कुछ भी आत्मा के मजे का नहीं रखा हुआ। आत्मा को तो किसी मजे की ज़रूरत ही नहीं है क्योंकि वो स्वयं आनन्दमयी है। फिर यह कैसा कौतुक है कि आत्मा इस मजे में मस्त हो गयी है। कहीं यह भँवरे वाली बात तो नहीं हो रही! हम समझते हैं कि एक दिन हमें यह शरीर छोड़ना ही है, फिर भी हम साहिब का भजन नहीं करते हैं। हम सोचते हैं कि माया का थोड़ा-सा मज़ा और ले लिया जाए, पर हमें नहीं पता है कि अगर कोई सद्गुरु हमें बार-बार जगाने का प्रयत्न कर रहा है तो ठीक है, हम बच जाएंगे, पर यदि हमने सद्गुरु की पुकार को भी अनसुना कर दिया, उसके जगाने पर भी हम नहीं जागे और माया के मजे में मस्त रहे, तो निश्चय ही माया हमें नर-तन से गिरा देगी और हम माया का मज़ा लेते-लेते माया की ही गोद में सदा के लिए सो जाएंगे और हमारा अमोलक मानव जीवन बेकार चला जाएगा।

विषय इन्द्री के मजे की सज़ा: यह मज़ा लेता है— हाथी। वो बड़ा कामी जानवर है। उसे पकड़ने के लिए शिकारी जंगल में किसी पेड़ के साथ एक हथनी बाँध देते हैं। हथनी के थोड़ी आगे एक खड्डा खोदकर ऊपर से छोटी-छोटी लकड़ियाँ डालकर घास-फूस से उसे अच्छी तरह ढ़क देते हैं, ताकि हाथी को पता न चले। हाथी जब हथनी को देखता है तो दौड़ता हुआ विषय आनन्द के लिए उसके पास जाता है। जैसे ही वहाँ घास-फूस पर पाँव पड़ता है, हाथी के वज़न से छोटी-छोटी लकड़ियाँ चूर-चूर हो हाथी के साथ खड्डे में गिर जाती हैं। कुछ दिन तक हाथी वहीं भूखा-प्यासा पड़ा रहता है। बाद में शिकारी आता है, उसे पालतू बना लेता है और गले में घण्टियाँ डालकर घूमता है।

मन और माया ने भी जीवात्मा को इसी तरह फँसाकर पालतू

बना लिया है। इसलिए अब वो अपने जोर से इस फाँस से आजाद नहीं हो सकता। यदि एक इन्द्री का मज़ा ही जीव के लिए इतना ख़तरनाक है, तब इस मानव का क्या हाल होगा, जिसकी पाँचों ही इन्द्रियाँ एक-से-एक बढ़कर हैं, सभी तेज़ हैं। ये सभी बलपूर्वक आत्मा को नरक की ओर घसीटती हुई ले जाती हैं। इतना ही नहीं, ऊपर से काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार भी अपने-अपने तरीके से इसे नाना नाच, नचा रहे हैं? इस पर साहिब कह रहे हैं—

बहु बंधन ते बाँधिया, एक बिचारा जीव।

जीव बिचारा क्या करे, जो न धुड़ावे पीव॥

किसी सुन्दर वस्तु को देखकर आँखें ललचाती हैं, मनुष्य चोरी करता है, पाप कर्म करता है। पाप कर्मों के कारण ही तो आत्मा इस संसार में बार-बार जन्म लेने की सज़ा भोग रही है। मगर पाप तो मन करता है। मन को ही पापी कहा गया है। फिर आत्मा का क्या दोष हुआ? क्या वो भी दोषी है? हाँ! आत्मा भी इसमें शामिल हो रही है। जैसे कोई किसी का कत्ल करने जाता है तो इसमें बहुत कुछ शामिल हो गया। वहाँ तक जाने के लिए टाँगें शामिल हुईं। फिर छुरा आदि मारने में हाथ शामिल हुआ। जो गुस्सा आया था, वो भी मन से था। फिर ऐसे में आत्म-देव कहाँ गायब था? क्या आत्मा की भी कुछ गलती थी या नहीं? आत्मा पूरी-पूरी सहयोगी थी, इसमें। हाथ-पाँव को जो ऊर्जा चाहिए थी, वो आत्मा ने ही दी। क्रोध मन से था, पर यदि आत्मा विचार करती और हाथ-पाँव को ताकत ही न देती तो मन शांत हो जाता और पाप कर्म न हो पाता। इसलिए आत्मा इन्हें शक्ति देकर इस पाप में शामिल हो गयी। चोर अपराधी होता है तो चोर का साथ देने वाला भी अपराधी माना जाता है। उग्रवादी को तो सज़ा मिलनी ही चाहिए, पर यदि कोई उसे शरण दे रहा है, सहायता दे रहा है, उसे क्या ऐसे ही छोड़

देना चाहिए। इसी तरह आत्मदेव भी दण्ड का अधिकारी बन रहा है। फिर भी हाथ-पाँव को ताक़त क्यों दी गयी? आत्मा भूल गयी। इसलिए यह तो निश्चित है कि आत्मा इनके बंधन में है।

आँखों ने सुन्दर फूल देखा, नाक ने उसकी खुशबू लेनी चाही। आँखों ने स्वादिष्ट पकवान देखा, मुँह में पानी भर आया, जीभ खाने को ललचाने लगी। यह सब क्या हुआ? सब इन्द्रियाँ आपस में मिली हुई थीं। इन्होंने आत्मा को मजबूर किया। आत्म देव कुंद पड़ा था। उसे अपना ज्ञान ही न था। उसका इन चीज़ों से कोई वास्ता नहीं है, पर फिर भी वो इन्द्रियों के इशारे पर इस काम को पूरा करने में जुट गया। हमें इस बात पर बड़ी गम्भीरता से विचार करना होगा। हमें सोचना होगा, यह सब क्यों हो रहा है, क्योंकि- **‘जीव पड़ा बहु लूट में, नहीं कछु लेन न देन’**। जीव बड़ी लूट में है। उसे बचाना है। उसका इन चीज़ों से कोई वास्ता नहीं है। वो अपनी शक्ति से अपना विनाश कर रहा है, इसलिए संतों ने बार-बार आगाह किया है-

यह पिंजड़ा नहीं तेरा हंसा,

यह पिंजड़ा नहीं तेरा।

जैसे तोता शिकारी के पिंजड़े को छोड़कर कहीं नहीं भागता, इसी तरह आत्मा मन के पिंजड़े में स्वयं कैद होकर बैठ गयी है। आओ, पहले देखते हैं कि तोता क्यों पिंजड़े को छोड़ना नहीं चाहता? जैसा कि पीछे बताया गया है कि तोते को नलनी के साथ शीशा और फल बाँधकर शिकारी पकड़ता है। फिर वो शिकारी उसे पहले एक पिंजड़े में डालता है। यदि वो उसे पिंजड़े में न डाले तो फिर तो तोता उसी समय उड़ जाए। आत्मा को भी यदि शरीर रूपी पिंजड़े में डालकर मन कैद न करता तो आत्माएँ कब की अमर-लोक में साहिब के पास चली गयी होतीं। इस तरह तोते को पिंजरे में डालकर

शिकारी रोज़ उसे थोड़ी-थोड़ी अफ़ीम देना शुरू कर देता है। जब तोता उसका आदी हो जाता है तो शिकारी एक दिन उसे बिना अफ़ीम के दाना देता है। अब तोते से अफ़ीम के बिना नहीं रहा जाता, क्योंकि उसे अमल हो चुका होता है, इसलिए तोता तड़पता है, फड़फड़ाता है। शिकारी जान जाता है कि यह अब आदी हो चुका है; उसे पिंजड़े से निकालता है, उड़ा देता है—जाओ। तोता बड़ा खुश होता है—वाह! आज तो आज्ञाद हो गया। चला जाता है, बड़ी दूर। सोचता है, नहीं आऊँगा फिर कभी भी, इस पिंजड़े में। पर अचरज कि बात है कि दो-तीन दिन बाद वो तोता खुद आकर उस पिंजड़े में बैठ जाता है, क्योंकि उसे जंगल में अफ़ीम नहीं मिल पाती, जिसका वो आदी हो चुका होता है, बाकी सब कुछ खाता है, पर उसे जो अमल बन चुका होता है, वो कहीं नहीं मिल पाता, इसलिए तोता खुद आकर पिंजड़े में बैठ जाता है। उस शिकारी ने उसे इस तरह पक्का कैद कर लिया। इसी तरह निरंजन ने आत्मा को शरीर में डालकर मोहमाया का नशा दे दिया है। इस शरीर के सभी द्वार खुले हैं। पर आत्मा निकल नहीं रही है, क्योंकि उसे अमल है—मेरा भाई, मेरा घर, मेरा बेटा, मेरी माँ आदि। इस अमल के अन्दर आत्मा खो गयी है, इसलिए वो किसी भी स्थिति में इस शरीर को छोड़कर जाना नहीं चाहती।

शिकारी के तोते की तरह यह आत्मा घूम-घूमकर इस शरीर रूपी पिंजड़े में आ रही ही। जैसे उसे अफ़ीम का नशा था, ऐसे ही आत्मा को आसक्ति हो गयी है माया में। माया का नशा चढ़ गया है।

सभी शरीर बन कर जी रहे हैं। एक आनन्द ढूँढ़ रहे हैं। क्योंकि आत्मा आनन्द की आदि हो चुकी है। यह उस आनन्द में रह चुकी है। यह आनन्द स्वरूपिनी है। जो गद्दे पर सोने वाला है, उसे जमीन पर लेटने को कहो तो उसे नींद नहीं आयेगी, करवट ही लेता रहेगा सारी रात। तो हरेक आनन्द खोज रहा है। कोई किसी में, कोई किसी में। कोई पैसे में,

कोई विषयों में ढूँढ़ रहा है आनन्द। उसे रात दिन फिर वही नारी ही दिखती है, वो उन्हीं में खोया रहता है। राजा लोगों ने बड़ी-बड़ी रानियाँ रखीं, विषय किये, पर सुख नहीं मिला। तुलसीदास जी बड़ा प्यारा कह रहे हैं—

घृत भल मिले पानी के मथ से, सिकता से भल तेल।

बिन प्रभु भजन सुख नहीं, यह सिद्धांत अपेल ॥

कह रहे हैं कि पानी के मंथन से घी नहीं मिल सकता है, पर यदि कोई कहे तो भले ही मान लूँगा, रेत को पेर कर तेल नहीं निकाला जा सकता है, पर कोई कहे तो भले ही मान लूँ, पर कोई कहे कि प्रभु भजन के बिना सुख मिलेगा, तो यह नहीं मानूँगा, यह नहीं हो सकता है।

दुनिया का हरेक आदमी नशे में घूम रहा है। कोई देखता हूँ कि अपने दोत्रे-पोत्रे को उठाए-उठाए फिरते हैं, चूमते-चाटते रहते हैं, कोई देखता हूँ कि कई-कई घण्टे लड़कियों के इंतजार में खड़े रहते हैं। फिल्मी दुनिया वाले भी कभी-कभी बड़ी प्यारी बात कह देते हैं। एक ने कहा—

नशे में हूँ लेकिन, मुझे यह पता है,
कि इस जिंदगी में, सभी पी रहे हैं।
कोई पी रहा है, लहू आदमी का,
किसी को नज़र से, पिलायी गयी है।
किसी को नशा है, जहाँ में खुशी का,
किसी को नशा है, गमेँ जिंदगी का ॥

दुनिया में सबको नशा है। कोई इंसान का लहू पी रहा है, किसी को नज़रों से पिलायी गयी है, कोई सुख के नशे में है, कोई दुख के नशे में। वो कह रहा है कि नशे में हूँ लेकिन मुझे पता है कि सभी पी रहे हैं। मुझे तो इसमें रुहानियत नज़र आई। मैं बड़ी गहराई में गया। इतना तो जिसने लिखा होगा, वो भी नहीं गया होगा। सच है, सभी नशे की गोलियाँ खाए जा रहे हैं। कोई काम के नशे में है, कोई क्रोध के नशे में

है, पूरी दुनिया नशे में है। भजन का नशा किसी को पता नहीं है। उसमें ही है सच्चा आनन्द। 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात ॥' वो अजीब नशा है। जब वो मज्जा मिल जाता है तो बाकी मजे फीके हो जाते हैं। और जितने भी नशे हैं, उनका अंत दुख है। इसलिए आत्मा का मज्जा लेना जरूरी है, उसका ज्ञान पाना जरूरी है।

फिर दूसरी बात है कि—

पराधीन सुख सपनेहु नाहिं ॥

जो बंधन में है, वो कभी भी सुखी नहीं हो सकता है। आत्मदेव बंधन में है। आत्मदेव बड़ी मुश्किल में है। दुनिया के कुछ लोग कहेंगे कि हमें तो भाई कोई मुश्किल नहीं है, हम तो मौज-मस्ती में हैं, हम तो बड़े आराम में हैं, हमारे पास कोठी, बंगला सब कुछ है।

कोठी बंगला कारों की, कमी नहीं जिनके पास में।

वो भी यूँ कहते हैं, हम बड़े दुखी संसार में ॥

संसार को दुखों का घर कहा। जेल में कोई कहे कि यहाँ बड़े मजे में हूँ तो उसकी बड़ी बेवकूफी होगी। क्योंकि सबसे बड़ा आनन्द है—आज़ादी! स्वतंत्रता! वो ही उसकी वहाँ पर बँधी है। इसलिए चाहे कितना भी अच्छा भोजन वहाँ मिले, कितनी भी सुविधाएँ मिलें, पर वो कैद में है। इसलिए वहाँ सुख नहीं है। ऐसे ही आत्मा यहाँ कैद में है, इसलिए आत्मा को भी यहाँ सुख नहीं है। आत्मा यहाँ बंधन में तो है ही है। आत्मा यहाँ दुखी है। अगर हम देखें कि कैसी है आत्मा तो आत्मा बड़ी निराली है। आप हम सब देख रहे हैं कि अपने पूर्वजों की शक्ल, गुण, जीन्स आदि आपमें हैं। आप अपने में अपने पिता को देख रहे होंगे। आप अपने बच्चों में अपना रूप देख रहे होंगे। स्वाभाविक है। आपके बच्चों में आपके गुण आए। यह आत्मा परमात्मा का अंश है, इसलिए इस आत्मा में उसकी वृत्तियाँ हैं। इस आत्मा में बड़ा जलवा है। यह आत्मा साधारण नहीं है। जैसे आपके बच्चों में आपके गुण हैं, आपके जीन्स हैं,

आत्मा में भी परमात्मा के गुण आदि इसी प्रकार से हैं। आत्मा बड़ी निराली है। परमात्मा आनन्दमय है तो यह भी आनन्दमय है, परमात्मा शक्तिमान है तो यह भी शक्तिमान है, परमात्मा निर्मल है तो यह आत्मा भी निर्मल है। क्योंकि सिद्धांत भी यही कह रहा है कि जो भी अंश है, वो अंशी की वृत्ति पर है। बिलकुल भी उसके इर्द-गिर्द है। यह इसलिए अमर है, क्योंकि ईश्वर भी अविनाशी है। ईश्वर निर्लेप है तो आत्मा भी निर्लेप है। ईश्वर नित्य है तो यह भी नित्य है। किसी देश, काल में परमात्मा नष्ट नहीं होता है तो यह भी नहीं होती है। उसमें जीर्णता नहीं है तो इसमें भी नहीं है, यह भी जीर्ण नहीं होती है। आत्मा जब उसका अंश है तो ये वृत्तियाँ, ये गुण, ये सब चीजें इसके अन्दर भी हैं। पर जब हम इस आत्मा को शरीर के अन्दर देख रहे हैं तो यह बड़ी दुर्दशा में दिखाई दे रही है। आत्मा शरीर को धारण करने के बाद अपने पूरे नूर में नहीं है। यहाँ आत्मा काफ़ी परेशान नज़र आ रही है।

बहु बंधन ते बाँधिया, एक विचारा जीव।

जीव विचारा क्या करे, जो न छुड़ावे पीव॥

जब हम इस दुनिया की तरफ देखते हैं तो आत्मदेव इस संसार में बंधन में मिल रहा है। कोई परेशान है। और जब हम इस ढाँचे को देखते हैं, पंच भौतिक शरीर को देखते हैं तो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता, आत्मा का व्यवहार नज़र नहीं आ रहा है। कहाँ गयी है आत्मा? आत्मा को ऐसा बाँध दिया है कि पता ही नहीं चल रहा है। जब भी व्यक्ति को देखते हैं तो व्यक्ति में आत्मा का दर्शन नहीं हो रहा है। कहाँ गयी है आत्मा? एक चीज़ हम सभी चाह रहे हैं—आत्मा का ज्ञान। कहाँ गयी है आत्मा? इसी में तो है। पर दिख नहीं रही है। बाँधा इतनी बुरी तरह से है कि आत्मा का स्वरूप ही अपने अन्दर में अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। वाह भाई, बाँधने वाली ताक़त बड़ी शातिर है। बहुत बुरी तरह से इस आत्मा को बाँधा गया है। बाँधने वाली ताक़त बड़ी ताक़तवर है। इस आत्मा का व्यवहार, आत्मनिष्ठता दिख नहीं रही है। आदमी चोरी कर

रहा है, ठगी कर रहा है, चारसौबीसी कर रहा है, बेईमानी कर रहा है। यह आत्मा नहीं हो सकती है। आत्मा का व्यवहार नज़र नहीं आ रहा है। आत्मा ज़रूर कहीं बँधी हुई है। आत्मा को कहीं गुम करके रखा हुआ है। आत्मा को कहीं ऐसे बंधन में डाला है कि आत्मा अपने स्वरूप को नहीं जान पा रही है और लोग जो अनिष्टकारी कार्य कर रहे हैं, कतई आत्मदेव ये नहीं करना चाहता है। आत्मदेव का कुछ नहीं चल रहा है। चोरी, ठगी, बेईमानी, हिंसा, मार-काट, व्यभिचार आदि मनुष्य कर रहा है। अगर यही आत्मा है तो परमात्मा भी ऐसा ही होगा फिर! नहीं! शास्त्राकारों ने, महापुरुषों ने आत्मा के गुणों का बयान किया है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है। तो फिर यह क्या है? इसका मतलब है कि आत्मदेव से कुछ ग़लत करवाया जा रहा है। इस आत्मा से कुछ अनिष्टकारी कर्म करवाए जा रहे हैं। कौन करवाए जा रहा है?

जब भी आप कोई कार्य करते हैं तो उसमें आत्मा का भी तो सहयोग है। आदमी चोरी करने गया। आत्मदेव भी शामिल हुआ। वासुदेव ने साफ़ कहा—हे अर्जुन! जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग करके नवीन वस्त्रों को धारण करता है, इस तरह आत्मा एक शरीर का त्याग कर दूसरे कर्म रूपी नवीन वस्त्र को धारण करता है। इसका मतलब है कि आत्मा कर्म के द्वारा ही बंधन में है। आत्मा को कर्म की ज़रूरत क्या पड़ गयी? कैसा कर्म कर रही है आत्मा? पूरा-पूरा अज्ञान। भाई, आत्मा कर्मानुकूल जन्म और मरण के बंधन में आ रही है, कर्मानुकूल नये-नये शरीरों को धारण कर रही है। आत्मा को कर्म की ज़रूरत क्या पड़ी? जब भी हम दुनिया के लोगों की तरफ देख रहे हैं तो मनुष्य कर्म कर रहे हैं। इस आत्मदेव को कर्म की ज़रूरत क्या पड़ी? सबसे पहले देखते हैं कि कर्मानुकूल ही सुख-दुख और जन्म-मरण को प्राप्त कर रही है। पहले हम देखते हैं कि मनुष्य कर्म क्या कर रहा है? कोई खेती-बाड़ी कर रहा है। भाई, उससे आत्मा का क्या संबंध है? यह तो शरीर का नाता हुआ। आत्मा तो खाती-पीती ही नहीं है। आत्मा में मुँह ही नहीं है; इंद्रियाँ

नहीं हैं। आत्मदेव इंद्रियातीत है, व्योमातीत है, शब्दातीत है, मन और इंद्रियों से परे है। आत्मा कुछ खा-पी ही नहीं रही है और मनुष्य कर्म कर रहा है। आखिर क्यों? किसके लिए? कौन से कर्म कर रहा है? पाप और पुण्य दो तरह के कर्म मनुष्य कर रहा है। सभी शरीर की ज़रूरत के लिए, आत्मा के लिए नहीं। भाई, कोई खेती कर रहा है। क्यों कर रहा है? भाई, अनाज आयेगा, दाना होगा, खाऊँ-पीऊँ। शरीर के लिए ही न! नौकरी कर रहा है, पेशा कर रहा है। ये शरीर के लिए हैं। महज इस देही के लिए ही मनुष्य कर्म कर रहा है। भाई, घर बनाया। किसके लिए बनाया? आत्मा को तो इसकी आवश्यकता ही नहीं है। शीतोष्ण से यह परे है। सर्दी और गर्मी आत्मा को बाँध नहीं सकती है अपने दायरे में। न्यूनाधिक नहीं होती है आत्मा। तो घर की आत्मा को ज़रूरत नहीं है। घर की ज़रूरत है शरीर को। शरीर के धर्म में फँस गयी है आत्मा। शरीर माया है। वाह भाई, इशारा मिल रहा है कि आत्मा माया में उलझी है। इसका मतलब है कि आत्मा शरीर के धर्म का पालन कर रही है। घर बनाया। शीतोष्ण से बचने के लिए। घर में क्या है? भाई, घर में एक कमरा है—किचन। वो क्या है? इस शरीर के लिए भोजन बनाने के लिए। आत्मा जब भोजन ही नहीं खाती तो आत्मा को किचन की क्या ज़रूरत है। घर में और क्या है? भाई—बाथरूम। स्नान पानी करने के लिए। आत्मा तो किसी भी वस्तु से प्रभावित ही नहीं होती है। यह भी तो शरीर के लिए है। फिर घर में क्या है भाई? टायलेट है—मल-विसर्जन के लिए। आत्मा खा-पी नहीं रही है; उसमें ये इंद्रियाँ नहीं हैं मल-मूत्र की। फिर क्या है घर में? भाई—बेडरूम। किसके लिए? सोने के लिए। उस कमरे से आत्मा को क्या लेना है? वो न खड़ी है, न बैठी है, न सो रही है, न जाग रही है। उसको तो नींद की आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब है कि जो बेडरूम बनाया, इसी के लिए बनाया। फिर है एक ड्राइंगरूम। उठने-बैठने का कमरा। डायनिंग रूम। भाई, खाने-पीने के लिए। और घर में क्या है? यही तो है। फिर कहीं स्टोर बना दिया आपने। किसलिए? जो

सामग्री हमारे शरीर के लिए ज़रूरी है, उसका संग्रह करने के लिए स्टोर है। इसमें आत्मा का कुछ हुआ ही नहीं है। बस, आत्मदेव ने भी मान लिया है कि हम शरीर हैं। यह मान्यता ही पीड़ादायक है। आत्मा ने मान ही नहीं लिया, व्यवहार में वैसा कर भी रही है। जो भी कर्म मनुष्य कर रहा है, इस शरीर के लिए। फिर क्या होता है कि इन्हीं सब चीज़ों को हासिल करने के लिए, अच्छा घर पाने के लिए, अच्छा भोजन पाने के लिए, आदमी छल, कपट, धोखा, बेईमानी, हिंसा आदि कर रहा है। ये सब क्यों हुआ? कर्म। कर्म का कारण देही है। साहिब ने बड़ा खूबसूरत कहा। पर यह मेथामेटिक बड़ी गहरी है। सुनने के बाद भी आदमी को समझ में नहीं आती है। आदमी सोचता है कि मैं समझ गया, तो भी समझ में नहीं आती है। साहिब वाणी में कह रहे हैं—

देह धरे का दण्ड है, भुगतत हैं सब कोय।

ज्ञानी भुगतत ज्ञान से, मूरख भुगतत रोय॥

साहिब फिर कह रहे हैं—

आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी में॥

आखिर यह नष्ट होना-ही-होना है। इसी के लिए आदमी फिर क्या करता है—छल, कपट, धोखा, चारसौबीसी। मेरे बच्चे ठीक रहें। और इन्हीं कर्मों का कारण देह है। इसी की तृप्ति और संतुष्टि और इसके निर्वाह के लिए मनुष्य कर्म कर रहा है। आत्मदेव जुट गया। अच्छा, कौन प्रेरित कर रहा है सभी कर्मों के लिए? यह आत्मदेव इतना निर्मल होकर ये सब कर रहा है। शरीर अनित्य है, अधम है। आत्मदेव ने इसे नित्य मान लिया है। बहुत गंभीर समस्या है। सभी शरीर बनकर ही जी रहे हैं। इसका मतलब है कि बाँधने वाली ताक़त बड़ी शातिर है। क्या विद्वान, क्या ऋषि, क्या मुनि, साहिब ने वाणी में कहा—

कहैं कबीर किसे समझाऊँ, सब जग अँधा।

इक दुई होवें उन्हें समझाऊँ, सबहि भुलाना पेट के धंधा॥

कह रहे हैं कि पूरी दुनिया अँधी है। सबको पेट का धंधा लगा हुआ है। सभी इसी क्रम में हैं। बड़े-बड़े बुद्धिजीवी भी इसी में उलझे हैं। साहिब कह रहे हैं—

**तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया ॥
बाटे बाट सब कोई दुखिया, क्या तपसी क्या बैरागी ॥**

इस तरह शरीर धारण करके कोई सुखी नहीं हुआ। दुनिया को देखें तो इसी शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सब लगे हुए हैं। इसलिए सब अधर्म की तरफ चल रहे हैं। सब नौकरी के लिए परेशान हैं, एक-दूसरे को देखकर ईर्ष्या कर रहे हैं। मैं कहीं से भी परेशान नहीं होता हूँ। किसी बाबा, महात्मा को देखकर, किसी के वैभव को देखकर ईर्ष्या नहीं करता हूँ। आपको भी हिदायत देता हूँ। यह दो कौड़ी का बना देगी आपको। जब भी इंसान ईर्ष्या करता है तो बड़ा छोटा हो जाता है। ऐसे में वो दोष बोलने लगता है। जब नहीं है तो भी झूठ बोलने लगता है, धूर्त बन जाता है। अशांति आ जाती है, भय आ जाता है। इसके निदान के लिए कितना सुंदर कहा—

**जो तुझको काँटे बोवे, उसको बो तू फूल।
उसको उसके काँटे मिलेंगे, तुझको तेरे फूल ॥**

गुस्सा करीब-करीब सब करते हैं। इससे बड़ा नुकसान है। गुस्से के समय दिमाग की कोशिकाएँ ज़हरीला पदार्थ निकालती हैं। वो हृदय और पेट में पहुँचता है। उसकी सेहत कभी ठीक नहीं रह सकती है। इससे बचो। ध्यान ही न दो। गुस्से की शुरुआत अक्ल से है और इसका अंत बड़ा ख़तरनाक होता है। शुरुआत ऐसे होती है कि ऐसे करना चाहिए था, वैसे करना चाहिए था। पर अंत में लात-घूँसों पर बात आ जाती है। तब इस दिमाग के अंदर की क्रूर कोशिकाएँ जगती हैं। तब मारने में मज़ा आता है। दिल करता है कि हाथ पाँव तोड़ दें। विचार वाली कोशिकाएँ परेशान हो जाती हैं। जैसे शरीफ़ आदमी शरारती की संगत के कारण

पेशान हो जाता है, इस तरह वो कोशिकाएँ पेशान होती हैं। इसलिए विचार की ताकत कम हो जाती है। क्रोध से शक्ल भी खराब हो जाती है। तब आँखें तरेरता है, चेहरे को सकोड़ता है। कभी गुस्सा करके शीशे में अपने को देख लेना कि कैसे लग रहे हो। पता चल जायेगा। जैसे गाली देकर आए, वैसा शीशे में करके देख लेना। यह गुस्सा बड़ा खूँखार है। इससे दूसरे को पीड़ा मिलेगी। गुस्सा दो लोगों को नहीं आ सकता है। एक ज्ञानी को और दूसरा पागल को। ज्ञानी विचार कर लेता है। गुस्से में गाली बकता है, लातें चलाता है। ये हरकतें अच्छी नहीं हैं।

क्रोध किये गत मुक्ति न होय ॥

शरीर का सिस्टम कुछ ऐसा है कि कुछ कोशिकाएँ प्रसन्नता के समय जाग्रत होती हैं। खुश होने से बड़ा लाभ है। इसलिए अपने मूड को हर समय गुस्से वाला नहीं रखना। मेरे पास बच्चे आते हैं। माँ-बाप नाम रखवाने आते हैं। पहले तो वे मुझे देखकर डर जाते हैं। शायद अजनबी लगता हूँ या फिर मेरी मूँछों को देख डर जाते होंगे। फिर मैं मुस्कराता हूँ तो वे मुस्कराकर जवाब देते हैं।

आत्मा आनन्दमयी है; गुस्सा आत्मा में नहीं है। यह शरीर की त्रुटियाँ हैं। इसकी शुरूआत तो बड़ी अक्लमंदी से होती है, पर परणीति बड़ी जाहिल है। अक्लमंदी यह है कि अक्ल को गुस्से में न लगाकर अक्ल से गुस्से को रोकना।

आत्मा में विकार नहीं है। शरीर में तो गंदगी है। हरेक अंग-प्रतिअंग से गंदगी निकल रही है। मुख आदि से गंदगी, नासिका से भी गंदगी, आँखों से भी गंदगी। मृत इंसान से जो बदबू निकलती है, वो बदबू मरे हुए चूहे से भी नहीं आती है। एक सैनिक की लाश 4 दिन बाद मिली तो उठा रहे थे। तब उँगलियाँ भी ज़िस्म में जा रही थीं। अब लाश तो उठानी थी; फायरिंग में मारा गया था; क्रियाकर्म करना था। इतनी बदबू थी कि कहने की बात नहीं, 7 दिन तक साबुन से रगड़-2 कर हाथ धोने पर भी बदबू नहीं गयी। इंसान के ज़िस्म में इतनी बदबू है। यह पूरा ज़िस्म

ही बदबू और विकार से भरा है। पर आत्मा में कोई बदबू नहीं है, कोई विकार नहीं है। फिर यह सहज है। यह धोखा नहीं जानती है। यह स्वाभाविक है।

बच्चे क्यों अच्छे हैं ? जब तक वो बच्चा है तो आत्मा का व्यवहार करता है। क्योंकि शांतिर दिमाग विकसित नहीं हुआ होता है। जब बड़ा हो जाता है तो दिमाग काम करने लगता है। यानी स्वाभाविक हम सहज हैं। आत्मा स्वाभाविक रूप से सहज है। यह मन, बुद्धि आदि की संगत से खराब हो गयी है। यह बड़ी निर्मल है। एक पल भी यह अचेत नहीं है।

आत्मा निर्मल है। यह सबमें एक जैसी है। मैंने खूँखार लोगों से भी व्यवहार करके देखा तो उनमें भी प्रेम मिला। यानी एक चीज़ सबमें मिल रही है। आत्मा तो सबमें मिल रही है। मन की वृत्तियाँ भी सबमें मिल रही हैं। कुछ मूल चीज़ें सबमें मिल रही हैं। शरीर में निवास करने वाली हरेक आत्मा शरीर से प्रेम करती है। नेवला भी अपनी सुरक्षा चाहता है। हम सबके साथ विरोधी ताकतें भी निवास कर रही हैं। वो विनाश की तरफ खींच कर ले चल रही हैं।

अनहद लूट होत घट भीतर, घट का मरम न जाना ॥

आत्मा परमानन्दमयी है। क्यों? परमात्मा का अंश होने से जो चीज़ें उसमें हैं, इस आत्मा में भी हैं।

सो माया बश भयो गुसाईं ।

अब माया के वश में आकर उनके इशारे पर चलने लगी।

जड़ चेतन है ग्रंथ पड़ गयी ॥

आत्मा ने सच में अपने को शरीर मानना शुरू कर दिया। यहीं से समस्या आ गयी। कोई भी प्राणी शरीर नहीं छोड़ना चाह रहा है। साँप कठिन योनि में है। पर वो भी जीना चाहता है। मिटाने के लिए जाओ तो फौरन अपनी सुरक्षा के लिए उठता है। यानी किसी भी शरीर में हो आत्मा, उससे प्रेम कर रही है। कीट-पतंग आदि निकृष्ट योनियाँ हैं। यदि

मच्छर को मारने जाओ तो फौरन उड़ जाता है। जिस भी शरीर में आत्मा है, उससे बहुत प्रेम कर रही है, उसे छोड़ना नहीं चाहती है।

आत्मा शरीर से प्रेम क्यों कर रही है? इसने शरीर को वरण किया; वहीं से दुख शुरू हुए। आखिर प्रेम क्यों कर रही है? एक आनन्द के लिए। दुनिया का हरेक आदमी मजे की तलाश में जी रहा है। शरीर में कौन-सा आनन्द है!

काँचे कुम्भ न पानी ठहरे ॥

थोड़ी ठंड लगे तो बीमार, थोड़ी गर्मी लगी तो बीमार।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, रुई लपेटी आग है ॥

दुनिया का मज़ा। थोड़ा इस मजे को देखते हैं। इसे पाने के लिए ही तो शरीर को नहीं छोड़ना चाहती है आत्मा। धारणा बनी हुई है कि इससे आनन्द मिलेगा। यह कैसे मिल रहा है? पहला मज़ा जीभ का। पर कई पदार्थ खाने पर भी तृप्ति नहीं हो रही है। जीभ कुछ देर तक इसका अनुभव कर रही है। अब इस मजे को लेने के लिए पदार्थ चाहिए, 6 रस हैं। अगर मीठा चाह रही है तो आम चाहिए, मिठाई चाहिए। यह डिमाण्ड करती है। कभी कहते हैं कि नमकीन खाना है। इसके लिए आदमी विनाश मचा देता है। पर एक पल का आनन्द है। फिर इन पदार्थों के लिए विनाश करता है। घर में कुछ ठीक न बना हो तो उठाकर फेंक देता है। यह स्वाद बड़ा ही जालिम है।

जिभ्या स्वाद के कारने, नर कीन्हे बहुत उपाय ॥

क्या इसके द्वारा प्राप्त आनन्द हमेशा हमारे साथ रहेगा! इसका वजूद कितना है! यह बेहद ख़राब आनन्द है। इसी के लिए तो दुनिया में मस्त है इंसान। फिर दूसरा है शिश्न का आनन्द। संभोग का मज़ा। बस इस पर इतना कहना चाहूँगा कि विवेकानन्द ने कहा है कि जो पदार्थ शरीर से निकलकर इतना आनन्द दे रहा है, वो शरीर में रहकर कितना आनन्द देगा! वो सन्यासी थे। एक ही बात कहकर बात ख़त्म कर दी। जो भी भोजन खा रहे हैं, उससे रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से मंजा

और मंजा से अस्थियाँ और फिर उनसे वीर्य बनता है। इस आनन्द का अंत विनाश है। अति भोगों से अति रोगों की उत्पत्ति होती है। वेद में कहा कि 25 साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करो। क्यों? 4 भागों में जीवन को बाँटा। ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, बानप्रस्त और सन्यास। 25 साल तक इसलिए ब्रह्मचर्य कि हड्डियाँ मजबूत रहेंगी। हड्डियों का फ्यूल है— वीर्य। हड्डियाँ वीर्य की ताकत से पनपती हैं। उन्हें वीर्य की शक्ति चाहिए। इसलिए 25 साल से पहले विषयों में उलझ गये तो अस्थियाँ कमजोर होंगी, जीवन रोगयुक्त होगा। शरीर में रोगों से लड़ाई की जो ताकत है, वो भोगी में बहुत कम हो जाती है। इसलिए असाध्य रोगों की उत्पत्ति होती है। टी.बी की बीमारी अति भोगों से हो जाती है। बार-बार विकारों की तरफ दौड़ता फिरेगा तो संचय नहीं हो पायेगा। मेरा विचार है कि बीमारी शरीर का स्वभाव नहीं है। यह बुलाई जाती है। पर आज नहीं कह सकते हैं, क्योंकि भोजन अच्छा नहीं खा रहे हैं। इंसान के अंदर हरेक बीमारी से लड़ने की ताकत है। पर इसे विषयों में उलझकर कम नहीं करना है। पशु लोग विषयी नहीं होते हैं। वो तो केवल सृजन के लिए करते हैं। इंसान स्वाद के लिए करता है।

कामी कुत्ता तीस दिन, अन्तर होत उदास।

कामी नर कुत्ता सदा, छह ऋतु बारह मास॥

इसलिए उन्हें बीमारियाँ कम हैं। वो लड़ रहे हैं। यह ताकत वीर्य से मिलती है। इसका मतलब है कि यह विषय-विकार घाटे का सौदा है। इसलिए वेद कह रहा है कि 25 साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करो। यदि नहीं रह सकते तो 25 साल के बाद विवाह करके देख लो कि क्या है गृहस्थ आश्रम। पर यह शरीर की मूल डिमाण्ड बनी है। इसके वशीभूत होकर आदमी कुछ भी कर लेता है। वेद आगे कह रहा है कि 50 साल के बाद बानप्रस्त हो जाओ। फिर विषय भूलकर भी नहीं करना है। क्योंकि स्त्रियों का मासिक भी तब बंद हो जाता है। उसका नारीत्व समाप्त हो जाता है। पशु बड़े शिष्ट हैं इस मामले में। यदि बैल को पता चल जाए

कि गाय बंझा हो गयी है तो पास नहीं जाता है। बड़े स्वाभाविक हैं वे। केवल इंसान स्वाद के लिए विषय-विकारों में उलझा है। तो वेद कह रहा है कि फिर दूध और पानी की तरह रहना दोनों, विषय-भोग नहीं करना। फिर रक्त भी अधिक नहीं बनता है। उतना ही बनता है जितना शरीर को चाहिए। फिर वीर्य को सृजित करने के लिए खून ज़्यादा नहीं बन पाता है। तो इंसान यह सब आनन्द के लिए कर रहा है। पर यह स्थायी आनन्द नहीं है। इसमें अधिक उलझने से क्रोध भी अधिक आ जायेगा। क्योंकि दिमाग की कुछ कोशिकाओं को वीर्य से ताक़त मिलती है, वो ठीक काम नहीं कर पाती हैं, जिस्से गुस्सा अधिक आता है, कण्ट्रोल भी नहीं हो पाता। विषय-विकारों वाला उदास रहेगा। बच्चे देखो, कितने मस्त हैं, खेलते रहते हैं। आदमी इस घाटे को समझ नहीं पा रहा है। यह मज़ा नहीं है, सज़ा है।

फिर तीसरा कानों का मज़ा मिलता है। लोग संगीत-डॉस में मस्त हैं। मुझे कुछ भी मज़ा नहीं दिख रहा है इसमें। चौथा खुशबू का मज़ा हा। पर सबसे जालिम मुँह का मज़ा है। फिर शिशन है। जीभ कभी खट्टा, कभी मीठा। फिर इनकी प्राप्ति के लिए धन चाहिए तो पाप कर रहा है और पाप के प्रायश्चित के लिए जन्म-मरण को धारण करना पड़ता है। इसलिए साहिब समझा रहे हैं—

इंद्री पसारा रोक ले, सब सुख तेरे पास ॥

इंद्रियों का मज़ा कहाँ से मिलता है? यह आत्मा का आनन्द है। आलू में मज़ा नहीं है। मज़ा आत्मा का है। किसी दिन आलू खाना और ध्यान कहीं और रखना तो देख लेना कि मज़ा नहीं आयेगा। इसका मतलब है कि इनकी अनुभूति हमारी आत्मा करती है। मन के द्वारा यह अनुभूति करती है। यही जकड़ा है। पर यह मज़ा है ध्यान में। सुरति जहाँ हैं वहाँ मज़ा आयेगा। यह ध्यान का मज़ा है। मन छल करके वहाँ दिखाता है। वो बताता है कि यह मज़ा वहाँ आया। पर था नहीं। बचपन से ही तो इंसान मज़ा ढूँढ़ता है। कभी माँ में, कभी खेल में। जहाँ-जहाँ सुरति लगती

है, वहीं से मज्जा आने लगता है। इसलिए इस सुरति को एकाग्र कर लेना।

सुरति संभाले काज है, तू मत भरम भुलाय।

मन सय्याद मनसा लहर में, बहत कतहू न जाय॥

इंसान ने सुरति को गलत जगह पर लगा दिया है। इसे गुरु में लगाना है। वास्तव में जिसकी जहाँ पर सुरति है, वही उसका गुरु है।

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।

कबीर का गुरु संत है, संतों का गुरु नाम॥

जो कामी है, उसका ध्यान हर समय स्त्री में ही लगा रहता है। उसका वही गुरु है। कुछ का ध्यान गाने सुनने में होता है। आजकल तो मोबाइल में गाने भराते हैं। कभी किसी को फ़ोन करता हूँ तो गाना बजता है। यानी यह है कान का मज्जा। यह दिलाता है मज्जा।

यह संसार फूल सेमर का, चोंच लगे पछताना है॥

यह संसार झाड़ और झाँखड़, आग लगे बरि जाना है॥

रहना नहीं देश बीराना है॥

कितने चेतावनी भरे शब्द हैं!

एक बार किसी ने कहा कि जब भी मिर्ची खाता हूँ तो बीमार हो जाता हूँ। पर 10-15 दिन में खानी ही है।

जब पता है कि मिर्ची खाने से बीमार होना है तो भी क्यों खानी! यह है मज्जा। पूरी जिंदगी आत्मा आनन्द की तलाश में भटकती रहती है। अब स्त्री में मज्जा नहीं है। जहाँ ध्यान लगेगा, वहीं मज्जा है। मन जहाँ चाह रहा है, वहीं लगा रहा है।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग खोजे बन माहिं।

ऐसे घट घट साईया, मूरख जानत नाहिं॥

वो महक चुभने वाली नहीं है। वो बूटी-बूटी सूँघता फिरता है। वो परेशान रहता है, सोचता है कि कहाँ है खुशबू! इस तरह आनन्द आत्मा में है, पर इंसान उसे भौतिक पदार्थों में खोज रहा है।

आत्मा अज्ञानवश शरीर के सुख में खो गयी है। मन माया के विशाल अज्ञान में आत्मा खो गयी है, जिससे उसका नूर नजर नहीं आ रहा है, उसका जलवा नजर नहीं आ रहा है, उसका आनन्द नजर नहीं आ रहा है।

सुरति फँसी संसार में, ताते पड़ गयो धूर।

वर्तमान में आम आदमी की सुरति कुंद है। हीरा मिट्टी में होता है तो प्रकाश नहीं दे पाता है, लेकिन जब उसे निकाल कर साफ किया जाता है तो वो हीरा रोशनी देना शुरू कर देता है। हीरे की रोशनी कम नहीं होती, केवल मात्र आच्छादित हो जाती है। इसी तरह हमारी सुरति अपने आप में परिपूर्ण है, वो घटती-बढ़ती नहीं, उसकी रोशनी, उसकी ताकत, उसका गुण कम नहीं हो सकता। इसलिए उसे किसी शक्ति की, किसी ताकत की जरूरत नहीं, पर उसमें मन-माया की गंध लग गयी है, जिसके कारण उसका प्रकाश लुप्त हो गया है, उसका गुण छिप गया है। इस आत्मा का न आगा है, न पीछा। ऐसी आत्मा को बड़ी प्लानिंग से जकड़ा हुआ है। सही में, बड़ी प्लानिंग से जकड़ा है। अब शरीर में कैसे जकड़ा है, यह तो पता चला। मन और माया में आत्मा फँसी है न। मन में कैसे फँसी है।

बहु बंधन ते बाँधिया, एक विचारा जीव।

यह मन द्वारा कई रस्सों से बाँधा गया है। मन ने इसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में बाँध रखा है। काम, क्रोध आदि शत्रु ताकतवर हैं। क्रोध से कितनी हिंसा करता है आदमी। बड़ी खराब चीज है। यह आत्मा में नहीं है। आत्मा के नूर को, उसके जलवे को छिपा दिया है, उसकी शक्ति को आच्छादित कर दिया गया है। कामातुर होता है तो बड़ी क्रूरताएँ करने लगता है, रात को उठ-उठकर कहीं पहुँच जाता है, झूठ बोलता है, छल करता है। नपुंसक लोगों को भी तंग करता है काम। देवादि को भी तंग करता है। देवत्व भी अधीन आ

जाता है इसके। मानव, कीट, पतंग, पशु, पक्षी सबको नचा रहा है यह। ये सब बुद्धि पर असर डालते हैं। क्रोध का असर भी बुद्धि पर पड़ता है। लोभ का भी। हमने बुद्धि को अपना मान रखा है। इसका मतलब है कि हमारे अन्दर के शत्रु बुद्धि पर असर डाल देते हैं। क्रोध आता है तो आदमी सोच नहीं पाता है, काम आता है, मति मार देता है। इस तरह आत्मदेव जड़ पदार्थों में आ गया।

इन सब मिल जीवहि घेरा। बिना परिचय भया यम को चेरा ॥

राक्षस की सेना होगी तो खतरनाक ही होगी। वो भी खराब होगा। ये मनुष्य के अन्दर रहते हैं, अपना काम कर रहे हैं। ये सब शक्तिशाली हैं, एक से बढ़कर एक हैं। आत्मदेव आज्ञा पालन के लिए बाध्य है। अब सवाल उठा कि क्यों कर रहा है? ये इससे ताकतवर हैं क्या? नहीं, अज्ञान के कारण। अज्ञान यह कि अपने को मन समझ लिया, बुद्धि समझ लिया। इसलिए मन नचा रहा है। मन का हथियार अज्ञान है। पता नहीं चल रहा है कि कौन कर रहा है। अज्ञान से सब हो रहा है। पर किसकी ताकत से हो रहा है? आत्मा की। आत्मदेव अनुकरण न करे तो कुछ नहीं हो सकता है। साहिब ने कहा—

आपा को आपा ही बंध्यो ॥

यह बड़ा सतर्क किया है। अपनी शक्ति से अपने को बाँधा।

जैसे स्वान काँच मंदिल मां, भरमत भूँकि परयो ॥

जैसे काँच के महल में रहने वाला कुत्ता शीशे में दिखने वाले अपने ही प्रतिबिंब को दूसरे कुत्ते समझकर भौंकता भौंकता मर जाता है। सच यह है कि अपनी ही परछाई को उसने दूसरा कुत्ता समझा।

जैसे नाहर कूप में, अपनी प्रतिमा देख परयो ॥

जैसे शेर कुँए में अपनी परछाई को देख दहाड़ा। ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। उसे कोई नहीं मारा। दूसरा शेर समझकर वो कूद पड़ा। यानी अपनी ही ताकत से अज्ञान के कारण मारा गया। इस तरह अपने को

बंधन में डालने के लिए आत्मदेव अज्ञानवश स्वयं अपनी ही उर्जा लगा रहा है। आत्मा के ऊपर भ्रम छा गया है।

वैसेहि गज फटिक सिला मो, दसनन आनि अरयो॥

पहाड़ी रास्ते पर चलने वाला हाथी स्फटिक पत्थर में अपने ही प्रतिबिंब को दूसरा हाथी समझ लड़ने लगा और प्राण गँवा बैठा।

मरकट मूठि स्वाद नहिं बिछुरै, घर घर नटत फिरो।

बंदर घड़े में हाथ डालकर फँस गया। खाली हाथ तो अन्दर चला गया, पर भरी हुई मुट्ठी बाहर कैसे आए। बंदर चिल्लाने लगा—बचाओ, बचाओ, किसी ने पकड़ लिया है। उसे कौन पकड़ा था कोई नहीं। उसने ही चलने पकड़ रखे थे।

कहैं कबीर नलनी के सुगना, तोहि कवने पकरो॥

तो तोता नलनी में फँस गया। उसने नलनी पर पाँव रखा तो नलनी वजन से घूम गयी, उसके पाँव ऊपर, शरीर नीचे हो गया। शिकारी ने शीशा लगा रखा था वहाँ। तोते ने सोचा कि किसी ने पकड़ लिया है। उसे भी कोई नहीं पकड़ा था। उसने ही नलनी को कसकर पकड़ रखा था। बंदर और तोते को पकड़ने वाला कोई नहीं था। उन्होंने ही क्रमशः चने और नलनी को पकड़ रखा था। छोड़ देते तो आजाद थे। आत्मा को कोई पकड़ ही कैसे सकता है। माया इसे पकड़ नहीं सकती। यह खुद पकड़ा हुआ है।

मन ने ऐसा भ्रम जाल फैलाया हुआ है कि यह स्वयं ही माया को पकड़े बैठा है, स्वयं ही बँध गया है।



बिन सतगुरु नर फिरत भुलाना

सद्गुरु के बिना यह मनुष्य भटक रहा है। यह अपनी आत्मा को नहीं जान पा रहा है। आत्मा को किसी ताक़त की ज़रूरत नहीं है। वो परम-पुरुष की अंश होने से बड़ी ताक़तवर है। उसे किसी अतिरिक्त ताक़त की ज़रूरत नहीं है। गुरु केवल उसके ऊपर से मन-माया के आवरण को हटा देता है, जिससे उसे अपने स्वरूप को समझने का अवसर मिल जाता है।

साहिब ने बड़े सुंदर अलंकार से इस तथ्य की पुष्टि की है—

बिना सतगुरु नर फिरत भुलाना।

खोजत फिरत न मिलत ठिकाना॥

बड़े अच्छे अलंकार से साहिब ने आत्मतत्त्व विस्मृत कैसे हो गया, यह बताया है। अपनी ताक़त यह कैसे खो दिया है, यह बता रहे हैं। कह रहे हैं कि बिना सच्चे सद्गुरु के यह भूला हुआ है।

केहर सुत इक आन गड़रिया।

पाल पोस के कियो सयाना॥

‘केहर’ शेर को कहते हैं। ‘सुत’ बच्चे को कहते हैं।

एक बार एक शेर का बच्चा बक़रवाल की बकरियों में आ गया। वो अपनी माँ से बिछड़ गया। बक़रवाल उसे उठाकर ले गया।

पाल पोस के कियो सयाना ॥

माँ से बिछड़ा हुआ था। माँ नहीं मिली। अब वो भेड़-बकरियों के साथ रहने लगा।

करत कलोल फिरत अंजियन संग।

आपन मरन उनहूँ न जाना ॥

‘अजा’ बकरी को कहते हैं। ‘कलौल’ यानी खेलकूद। वो गड़रिये की बकरियों के साथ खेलता था। अपना भेद उसे मालूम नहीं था कि शेर हूँ। बड़ा हो गया। घास भी खाने लगा। घास क्यों खाने लगा? आपके बच्चे भी कभी मिट्टी खाते हैं। बच्चों की जीभ इंद्री तेज़ होती है। मिट्टी में एक तत्व है। खाने की चीज़ नहीं थी। विषैले पदार्थ भी हैं। पर आदत पड़ गयी। मिट्टी खाना गंदी आदत है।

आत्मा को इंद्रियों के साथ रहने की बड़ी गंदी आदत पड़ गयी है। मेरा भतीजा मिट्टी खाता था। उसकी माँ कहती थी कि यह मिट्टी खाता है। मैंने कहा कि घर में मिट्टी न रखा करो। बाद में वो कहने लगी कि यह बाहर जाकर मिट्टी खाता है। मैंने कहा कि बाहर न जाने दो। फिर एक दिन कहने लगी कि जूते के तलवे से मिट्टी निकालकर खाता है। देखा न, कितनी गंदी आदत थी! मैंने कहा कि जूते ऊँची जगह पर रखा करो। फिर एक दिन कहने लगी कि अब दीवारों को चाटता है। अब दीवारें थोड़ा तोड़नी थीं। वाह! ऐसा ही है मन।

तीन लोक में मनहिं विराजी। ताहिं न चीहृत पंडित काजी ॥

तो उसे बाद में समझाया, भय दिया कि नहीं खाओ। मिट्टी खाने की चीज़ नहीं है। इस तरह शेर के लिए घास खाने की चीज़ नहीं है।

एक भैंस का कट्टा है। भैंस को चारा देने जाऊँ तो वो मेरे पैर की टो पकड़कर नौचता है। उसने दोनों टो खा ली हैं। भूखा होता है तो कुछ खाना चाहता है। टो खाने की चीज़ नहीं है; पर भूखा था।

संभवतः, शेर का बच्चा भी घास खाना इसलिए सीख गया होगा,

क्योंकि उसे कुछ और न मिला होगा। उसने देखा होगा कि बाकी भी यही खा रहे हैं। वो भी खाने लग गया। वो लड़ाई भी भेड़ की तरह ही करने लग गया। बोलने भी भेड़ की तरह ही लगा। गरजने की जगह मिनमिनाने लगा। कुत्ता भौंकता है, हाथी चिंगाड़ता है, शेर गरजता है, बकरी मिनमिनाती है। वो मिनमिनाने लगा। शेर को मिनमिनाना नहीं है। पर वो भेड़ों को मिनमिनाते देखता था। पूरे काम बकरियों वाले करने लगा। चलना भी बकरियों की तरह हो गया। वो बकरियों के साथ रह-रहकर बकरी बन गया। शेर कैसे बकरी बन सकता है? संगत।

मृगपति और जंगल से आयो।

ताहि देख वो बहु डराना॥

अब जो बकरवाल था, वो जब भी बकरियों को डंडा मारता था तो शेर को भी मारता था। जैसे सभी उसके काबू में थे, वो भी था। जब कहीं खो जाता तो बकरवाल उसे पकड़ लाता था। क्या आदमी शेर को पकड़ सकता है? नहीं, बकरियों के संग में उसका यह हाल हो गया। वो पूरी-पूरी बकरी बन गया। अपने को नहीं जानता था। तो—

मृगपति और जंगल से आयो, पाल पोस कर कियो सयाना॥

‘मृगपति’ शेर को कहते हैं। मृगा 27 फीट छलाँग लगाता है। शेर 28 फीट मारता है। शेर का स्वभाव है कि अपना शिकार एक्टिव करके मारता है। जैसे आप भोजन लचीला करके खाते हैं। शेर पहले दौड़ाता है। आप फुलका ठीक से बनाकर खा रहे हैं। शेर भी ऐसे ही करता है। वो पीछे से वार नहीं करता है। पहले भयभीत करता है। भागने का मौका देता है। दौड़ा-दौड़ाकर फिर मारता है। यह उसका स्वभाव है। उसे मृगा से चुनौती मिलती है। वो शेर को चैलेंज देता है। मृगा को शेर बड़े शौक से मारकर खाता है। पर जो शेर इंसान का माँस एक बार खा ले, वो फिर नरभक्षी हो जाता है, फिर दूसरे जानवर का शिकार करना उसे अच्छा नहीं लगता है। वो इंसान को ही खाता है। क्योंकि इंसान की चमड़ी ही

माँस है। भालू को खायेगा तो पहले बाल हैं; वो नौचता है। जिस शेर के मुँह पर इंसान का खून एक बार लग जाए तो वो दूसरे जानवर का शिकार नहीं करता है।

तो दूसरे जंगल का मृगपति आया। उसे देखकर वो बकरी बना हुआ शेर का बच्चा डर गया।

ताहि देख वो बहु डराना ॥

शेर ने देखा कि यह शेर का बच्चा है और घास खा रहा है, बकरियों के साथ में है और डंडे भी पड़ रहे हैं। यह तो बकरी बना हुआ है। यह तो शेर के धर्म के खिलाफ़ है। वो उसके पास पहुँचा। उसे देख बच्चा डर गया।

एक बार लंगूरों के टोले में इंसान भी था। वो क्या कर रहा था? जैसे लंगूर छलाँग मार रहे थे, वो भी मार रहा था। इतना तेज़ कोई आदमी पेड़ों में नहीं जा सकता है। वो लंगूरों के साथ लंगूर हो गया था। जहाँ लंगूर जाएँ, वो भी चला जाता था।

अब सवाल उठा कि वो कैसे लंगूर बन गया? था वो आदमी। 2-3 चीज़ें हैं। पहली बात है कि 90 प्रतिशत मेलजोल है। आदमी की 90 प्रतिशत आदतें मिलती हैं। पर टेक्निकल कारण कुछ और हैं। वो क्यों छलाँगें मार रहा था? क्योंकि फल खाने और दूध पीने से उसका शरीर लचीला हुआ। छोटपन से ही लंगूरनी उठाकर ले गयी होगी और उसे ममता दे दी होगी, अपना दूध पिला दिया होगा।

मैंने अखबार में पढ़ा कि एक कुत्तिया कूड़े के ढेर पर पड़े हुए छोटे-से बच्चे को रोज़ दूध पिलाने जाती थी। किसी ने बच्चे को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया था। कुत्तिया ने सोचा होगा कि कचरे में पड़ा है। वो रोज़ दूध पिलाने जाती थी। उसका टॉइटल भी था—कुत्तिया की ममता।

संभवता लंगूरनी ले गयी होगी और प्यार दे दिया होगा। बच्चे ने भी उसे ही अपनी माँ समझ लिया होगा। जैसे कोई बच्चा अपनाते हैं तो

वो तो उन्हें ही अपने माता-पिता समझता है न ! ऐसा ही हुआ होगा । अब धीरे-धीरे उसे सब सिखा दिया होगा । पर उसके शरीर का ढाँचा आदमी की तरह था । दूध पीने और फल खाने से आदमी तेज़ होगा ।

पर यह नहीं कह रहा हूँ कि अनाज नहीं खाना । क्योंकि लोग मेरी बात को उलट-पुलट कर देते हैं । एक दिन मुझे किसी ने कहा कि गाय माता है तो भैंस क्या है ? लोग सवाल पूछते हैं । भैंस की दो चीज़ें उसे थोड़ा किनारा कर रही हैं । भैंस पहले अपना शरीर बनाती है, पर गाय जितना खिलाओ, वापिस कर देती है । पर ईमानदारी से देखें तो—

जिसका पीजिए दूध, तिसको कहिये माय ॥

इसलिए सभी की रक्षा करनी है ।

तो वो बच्चा लंगूर हो गया । वो इंसान से किनारा करता गया । लंगूर बन गया । छलाँगें इसलिए मार रहा था कि दूध वही पिया, जीनस् आ गये । लंगूरों के टोले में भाषा भी सीख गया । बच्चों की याददाश्त भी बड़ी तेज़ होती है ।

एक बार गुरुदेव के पास कुछ लोग आए, कहा कि यह कैसा कलयुग आ गया है, इंसान का बच्चा लंगूर बन गया है । तो गुरुदेव ने यह बात बताई थी ।

वो लंगूरों की तरह ही काट भी रहा था, लंगूरों की तरह आदमी से चिढ़ रहा था, सब काम कर रहा था, उलटे लटक रहा था । संभवतः वो शेर का बच्चा भी वैसे ही हो गया । एक गाय ने बच्चा दिया तो दूसरे दिन मर गयी । अब दूसरी गाय उसे दूध पिलाने लगी । वो समझ रही थी कि इसकी माँ मर गयी है । कभी-कभी वो दूध पिला देती थी । फिर उसे निप्पल से दूध पिलाने लगे । पहले विरोध हुआ । पर बाद में वो समझ गया कि उसकी जीविका का कोई और साधन नहीं है ।

संभवतः इसी तरह हमारी आत्मा मन और इंद्रियों के संग में बिगड़ी है ।

तो जंगल के शेर ने देख लिया कि घास खा रहा है। फिर आश्चर्य हुआ। वो वहाँ गया तो उसे देख बच्चा डरने लगा। शेर ने कहा कि डरो नहीं। उसने कहा कि तुम मुझे खा जाओगे। शेर ने कहा कि तू भी शेर है। उसने कहा कि मैं तो बकरी हूँ। वो डरने लगा।

पकड़ भेद ताहि समझाना ॥

वो बच्चे को चश्मे के पास ले गया और उसे दिखाया कि देख, मैं और तू एक जैसे ही हैं। उसने कहा कि क्या सच में मैं शेर हूँ? शेर ने कहा कि तू शेर है। उसने उसे सब कुछ सिखा दिया। पंजा चलाना भी सिखा दिया। दहाड़ना भी सिखा दिया। उसकी वो ताक़त तो थी ही। इस तरह आत्मा की ताक़त कम नहीं हुई है, केवल मन के संग में कुंद हो गयी है।

सबकी गठरी लाल है, कोई नहीं कंगाल ॥

...तो

मृगपति और जंगल से आयो....

तो जब जंगल का शेर आया तो सब सिखा दिया।

पकड़े भेद ताहि समझाना ॥

पानी के चश्मे में दिखाया कि तू क्या है। कहा कि तू अपनी माँ से बिछड़ गया था। उसे सब कुछ सिखाया, कहा कि अब जा! सभी सिखाते हैं। चिड़िया उड़ना सिखाती है। कुत्तिया भी अपने बच्चे को सिखाती है। तो जब वो बकरियों के बीच में गया तो जैसे गडरिया पहले सबकी तरह उसे भी डंडा मारता था, अब भी मारने लगा तो वो दहाड़ा। सारी भेड़ें भाग गयीं; गडरिया भी भाग गया। रूपांतर यह है कि परमात्म रूपी शेर का बच्चा इंद्रिय रूपी भेड़ों के साथ विषय रूपी घास खा रहा है। मन रूपी गडरिया उसे डंडे मार रहा है। जंगल के शेर रूपी संतजन मिलते हैं तो आज्ञाचक्र रूपी चश्मे के पास ले जाते हैं, कहते हैं कि देख, तू आत्मा है।

उसकी ताक़त कहीं कम नहीं हुई थी। पर कहाँ थी ताक़त? ताक़त भेड़ों जैसी बन गयी क्या? नहीं, भेड़ों के साथ रहकर भी शेर जैसी ही ताक़त थी। ताक़त नहीं बदली। वही थी। स्वभाव बदल गया। भेड़ों की संगत में रह-रहकर भेड़ों की तरह ही हो गया। शेर मिला तो उसे उसका स्वरूप दिखा दिया।

इस तरह संतजन मिलते हैं तो आत्मा को जगा देते हैं। इंद्रिय रूपी भेड़ें भी डरने लगती हैं। मन कहीं भटकाता है तो आत्मा कहती है कि यह नहीं करना है। मन की ताक़त नहीं रह जाती है।

गुरु माया का नशा उतार देगा। फिर मन लगेगा ही नहीं किसी चीज़ में। जब ऐसा हो तो समझो कि नशा उतर गया है। सब पर शैतानी ताक़तों का नशा है। जिस दिन गुरु नाम की ताक़त देता है तो ड्राइविंग बिंदु पर खुद बैठ जाता है, मन हट जाता है। जब गुरु खुद वहाँ बैठ जाता है तो दुश्मन ठीक से समझ आने लग जाते हैं। ऋषि, मुनि नहीं समझ पाए। तपस्वी, योगी आदि भी भटक जाते हैं, पर भक्त भटक नहीं पाता है। अन्दर में रहने वाले शत्रु किसी मंत्र से, किसी तपस्या से काबू नहीं आने वाले। पर गुरु उन्हें काबू करने की नाम रूपी ताक़त दे देता है। फिर क्रोध डेडिकेशन में बदल जायेगा, मोह प्रेम में, अहंकार भरोसे में और काम आनन्द में बदल जायेगा। बिन मारे बैरी मरे, वाली बात हो जायेगी। धरती पर इन्हें मारने वाला कोई पैदा नहीं हुआ। सभी इनकी चपेट में आ गये। एक अदद गुरु के संपर्क में आने से ही ये काबू में आयेंगे। तब मोह, ममता हट जायेगी। जिन्होंने आत्मा को बीमार कर रखा है, सब शक्तिहीन हो जाते हैं।

यह सब गुरु कृपा से ही संभव हो जाता है।

हरि कृपा जो होय तो, नहीं होय तो नाहिं।

कहैं कबीर गुरु कृपा बिन, सकल बुद्धि बह जाहिं॥

कह रहे हैं कि यदि परमात्मा की कृपा हो जाए तो ठीक है, पर

आपा पौ आपहि बँध्यो

यदि नहीं हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, पर गुरु की कृपा का होना बड़ा जरूरी है। इसके बिना काम नहीं चल सकता।

गुरु कृपा से साधु कहावै। अनलपच्छ हवै लोक सिधावै॥

गुरु की कृपा से ही मनुष्य साधु बनता है और अनल पक्षी की तरह होकर अपने लोक को जाता है। बड़ा ही अजीब होने के कारण अनल पक्षी को राष्ट्र पक्षी रखा था। उसकी कहानी भी बड़ी प्यारी है। **अनलपच्छ जो रहै अकाशा। निशि दिन रहै पवन की आशा॥ दृष्टिभाव तिन रति विधि ठानी। यह विधि गरभ रहे तिहि जानी॥**

अनल पक्षी पृथ्वी से बहुत ऊपर शून्य में रहता है, जमीन पर आते ही मर जायेगा। वो सोता भी हवा में ही है, उसका कोई घोंसला नहीं होता। फिर हवा में ही खाता है और खाता भी हवा ही है, दाना नहीं चुगता है अनल पक्षी। वो विषय भी नहीं करता है, मात्र दृष्टि से अपनी मादा को गर्भवती कर देता है।

अंड प्रकाश कीन्ह पुनि तहवां। निराधार आलंबहिं जहवां॥ मारग माहिं पुष्ट भो अंडा। मारग माहिं विरह नौ खंडा॥

हवा में ही अब वो अंडा देता है और अंडा नीचे गिरना शुरू होता है। इतनी ऊँचाई से जब वो नीचे की ओर आता है तो आते आते रास्ते में ही वो अंडा पकता है। मुर्गी तो बैठकर सेती है, पर वो अंडा खुद ही सेह जाता है और फिर रास्ते में ही फूट भी जाता है। इतना ही नहीं—

मारग माहिं चक्षु तिन पावा। मारग माहिं पंख पर भावा॥ महि ढिग आवा सुधि भइ ताहिं। इहां मोर आश्रम नहिं आहीं॥

रास्ते में ही उसे आँखें भी आ जाती हैं, रास्ते में ही पंख भी निकल आते हैं। पृथ्वी पर गिरे तो मर जाता, पर पृथ्वी पर गिरने से पहले ही उसे सुधि भी आ जाती है कि उसका घर यहाँ नहीं है। इसलिए—

सुरति संभाल चले पुनि तहवां। मात पिता को आश्रम जहवां॥ अनलपच्छ तेहि लेन न आवैं। उलट चीन्ह निज घरहि सिधावैं॥

अब सुरति संभालकर वो खुद ही अपने घर की ओर चल पड़ता है। उसके माता पिता उसे लेने नहीं आते हैं। ठीक इसी तरह जब गुरु की कृपा होती है तो आत्मा खुद-ब-खुद अपने घर की ओर चलती है।

अब गुरु की कृपा क्या है? वास्तव में गुरु जो नाम रूपी अमोलक धन का दान देते हैं, वो ही शिष्य पर उनकी सबसे बड़ी कृपा है।

सभी रसायन में किया, नहीं नाम सम कोय॥

कह रहे हैं कि सभी दवाएँ मैंने कीं, पर नाम के समान कोई दवा नहीं। पर यह सांसारिक नाम नहीं है। यह 52 अक्षर से परे निःअक्षर है, सजीव है, विदेह नाम है और गुप्त है। इस नाम का रहस्य केवल संतजन ही जानते हैं। इन नाम को पाकर जीव अनलपक्षी के समान खुद-ब-खुद अपने लोक की ओर चलता है।

यही बढ़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।

बिना शब्द नहीं ऊबरै, के ता करे उपाय॥

जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी तरह नाम भी जीव को सांसारिक बंधनों से छुड़ाकर अपनी ओर खींच लेता है और जीव खुद-ब-खुद अपने सही घर की ओर खिंचता चला जाता है।



चला जब लोक को, शौक सब त्यागिया।

हंस का रूप सतगुरु बनाई॥

भृङ्ग ज्यों कीट को, पलट भृङ्गी करे।

आपन साथ रंग ले, ले उड़ाई॥

गुरु में देय समाय

कुछ अपने शरीर में ध्यान एकाग्र कर रहे हैं। ये पाँच तरह से ध्यान को एकाग्र कर रहे हैं। खेचरी, भूचरी, अगोचरी आदि मुद्राओं द्वारा अपने ध्यान को एकाग्र कर रहे हैं। कुछ तो ऐसे ही लगे हैं, उन्हें तो मालूम ही नहीं है कि वे किस साधना से ध्यान कर रहे हैं और इस साधना से वे कहाँ तक पहुँचेंगे। उनको जानकारी नहीं है इसकी, पर वे लगे हैं। आखिर इन साधनाओं में साधक कहाँ जा रहा है ? साहिब एक स्थान पर बड़ा सुंदर शब्द कह रहे हैं—

संतो शब्दै शब्द बखाना ॥

शब्द फाँस फँसा सब कोई, शब्द नहीं पहिचाना ॥

जो जिनका आराधन कीन्हा, तिनका कहूँ ठिकाना ॥

सभी 'शब्द-शब्द' की रट लगाए हुए हैं, पर शब्द को कोई पहचान नहीं सका। साहिब कह रहे हैं कि सबसे पहले परम-पुरुष ने पाँच शब्द पुकारे।

प्रथमै पूरण पुरुष पुरातन, पाँच शब्द उच्चार।

सोहं सत् ज्योति निरं जन, ररं कार ओंकारा ॥

यानी इनमें से कोई शब्द परमात्मा नहीं है बल्कि इन्हें पुकारने वाला परमात्मा है। आगे कह रहे हैं—

शब्दै निर्गुण शब्दै सर्गुण, शब्दै वेद बखाना ॥

शब्दै पुनि काया के भीतर, करि बैठे अस्थाना ॥

ज्ञानी योगी पण्डित सबहीं, शब्दै में अरुझाना।

पाँच शब्द और पाँचों मुद्रा, काया पाँच ठिकाना॥

शब्द ही सगुण है, शब्द ही निर्गुण है। वेद भी शब्द की बात कर रहा है। वे शब्द इस काया में भी हैं। साहिब कह रहे हैं कि बड़े-2 योगी, ज्ञानी, पण्डित आदि इन्हीं शब्दों में फँ से हुए हैं। शरीर में पाँच स्थानों पर इन पाँचों शब्दों का निवास है। पाँच मुद्राओं द्वारा साधक इनकी ओर जाते हैं। आखिर कैसे! साहिब आगे कह रहे हैं—

शब्द निरंजन चाचरि मुद्रा, सो है नैनन माहीं।

तेहि को जाना गोरख योगी, महा तेज है ताही॥

गोरखनाथ जी पहले नाम 'ज्योति निरंजन' का जाप कर रहे थे। ध्यान और साधना क्या कर रहे थे? अपना ध्यान वे तीसरे तिल यानी आँखों के मध्य में रोकते थे। आज भी हमारे देश में बहुत लोग हैं, जो यह साधना कर रहे हैं, पर साहिब ने यहाँ ध्यान रोकने के लिए नहीं कहा। यहाँ ध्यान लगाने वाले कह रहे हैं कि इससे अलख ब्रह्म की प्राप्ति होती है, पर उन्हें यह पता नहीं है कि यहाँ भी काल का दायरा है। वे यहीं अटक जाते हैं, आगे नहीं जा सकते। यहाँ साधक सिद्धियाँ भी प्राप्त कर लेता है, पर यह कोई आत्मा का ठिकाना नहीं है। साहिब आगे कह रहे हैं—

शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा, त्रिकुटी है अस्थाना।

व्यासदेव ताको पहिचाना, चाँद सूर्य सो जाना॥

व्यास जी 'ओंम' का जाप करते हुए आज्ञाचक्र में ध्यान रोकते थे। इस मुद्रा से साधक को महाकारण देही की प्राप्ति भी हो जाती है, वो प्रज्ञावस्था में चला जाता है, विभिन्न लोक-लोकान्तरों को देख लेता है। पर यह भी तीन-लोक तक का खेल है। आगे कह रहे हैं—

सोहं ग शब्द अगोचरि मुद्रा, भंवर गुफा अस्थाना।

शुकदेव ताको पहिचाना, सुन अनहद की ताना॥

शुकदेव जी सोहंग का जाप करते हुए अपना ध्यान धुनों में रखते थे और आनन्द की प्राप्ति करते थे। साहिब ने और संतों ने भी इन धुनों का अस्तित्व स्वीकार किया है, माना है, पर वे कह रहे हैं कि ये धुनें परमात्मा नहीं हैं। साहिब भी मान रहे हैं, धुनें हैं—

अनहद की धुन भँवरगुफा में, अति घनघोर मचाया है।

बाजे बजें अनेक भाँति के, सुनि के मन ललचाया है॥

तथा—

रस गगन गुफा में अजर झरै।

बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै॥

भँवर गुफा से उठती हुई ये धुनें सुषुम्ना में पहुँचती हैं। वहाँ ये धुनें बहुत तेज़ हो जाती हैं। दादू दयाल जी कह रहे हैं—

अनहद नाद गगन चढ़ गरजा, तब रस भया अमीदा।

सुषमन शून्य सुरत महलौ नभ, आया अजर अकीदा॥

ब्रह्मानन्द जी भी इन धुनों के लिए कह रहे हैं—

अनहद की धुन प्यारी साधो, अनहद की धुन प्यारी रे।

आसन पद्म लगा कर, कर से मूँद कान की बारी रे।

झीनी धुन में सुरत लगाओ, होत नाद झनकारी रे।

पहले पहले रिलमिल बाजे, पीछे न्यारी न्यारी रे।

घंटा शंख बंसरी वीणा, ताल मृदंग नगारी रे।

दिन दिन सुनत नाद जब बिकसे, काया कंपत शरीरे।

अमृत बूँद झरे मुख माहीं, योगी जन सुखकारी रे।

तन की सुध सब भूल जात है, घट में होय उजारी रे॥

इस तरह अंदर में होने वाली धुनों के लिए सबने कहा, पर साहिब ने तथा संतों ने यह कभी नहीं कहा कि यही पराकाष्ठा है, इसलिए साहिब आगे साफ-साफ कह रहे हैं—

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।

सुरति समानी शब्द में, उसको काल न खाय॥

फिर कौन-सा शब्द! यानी जिस शब्द की ओर इशारा कर रहे

हैं, वो कोई और है, अनहद शब्द नहीं। तभी तो एक अन्य स्थान पर भी बड़ा ही सुंदर कह रहे हैं—

सोई सदगुरु मोहिं भावै, जो नयनन अलख लखावै।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्राण पूज्य किरिया से न्यारा, सहज समाधि सिखावै।
द्वार न रूँधे पवन न रोके, नहिं अनहद अरुझावै.....॥

‘नहिं अनहद अरुझावै।’ साफ-साफ ही तो कह रहे हैं कि अनहद धुनों में नहीं उलझा दे। इससे प्रमाणित हो रहा है, स्पष्ट पता चल रहा है कि साहिब इन धुनों से कहीं आगे की बात कह रहे हैं।

.....त्रिकुटी महल में आव जहाँ ओंकार है।
आगे मारग कठिन सो अगम अपार है॥
तहाँ अनहद की घोर होत झनकार है।
लागि रहे सिद्ध साधु न पावत पार हैं॥....
ता ऊपर आकाश अमी का कूप है।
अनन्त भानु प्रकाश सो नगर अनूप है॥
तामे अक्षर एक सो सबका मूल है।
कहों सूक्ष्म गति होय विदेही फूल है॥
निःअक्षर का भेद हंस कोई पाइहैं।
कहै कबीर सो हंसा जाय समाइहैं॥

साहिब ने जिस शब्दकी बात की, वो, निःशब्द है।तो आगे कह रहे हैं—

सत् शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई आकाश सनेही।
तामे झिलमिल जोत दिखावे, जाना जनक विदेही॥

राजा जनक उनमुनि मुद्रा करते थे, अपना ध्यान सहस्रसार चक्र पर रोकते थे और अद्भुत संसार देखते थे, सोचते थे— यही है अनादि ब्रह्म। साहिब कह रहे हैं, नहीं! मामला आगे है। पाँचवीं मुद्रा के लिए कह रहे हैं—

रंकार खेचरी मुद्रा, दसवाँ द्वार ठिकाना।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, रंकार को जाना॥

इस तरह 10वें द्वार तक का ध्यान कहा। त्रिकाल में जितने भी ऋषि-मुनि, सिद्ध-साधक हुए, यहीं तक पहुँच कर अटक गये, पर साहिब ने इससे आगे कहा। बड़ा चौंकाने वाला शब्द कह रहे हैं—

पाँच शब्द औ पाँचों मुद्रा, सोई निश्चय माना।

आगे पूरण पुरुष पुरातन, उसकी ख़बर ना जाना॥

सिद्ध साधु त्रिदेवादि ले, पाँच शब्द में अटके।

मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औंधे मुँह लटके॥

यानी सभी पाँच शब्द तक अटक गये। आगे कोई नहीं गया। आगे के लिए कह रहे हैं—

इसके आगे भेद हमारा, जानेगा कोई जाननहारा।

कहैं कबीर जानेगा सोई, जा पर कृपा सतगुरु की होई॥

दिल्ली जाना है तो पठानकोट से होकर जाना है। पर पठानकोट लक्ष्य नहीं, माध्यम है। योग का विरोध तो बेवकूफी है, लेकिन शरीर योग वाला यह सोच ले कि परम-लोक में पहुँच जाऊँ गा तो बेवकूफी है, भूल है। अमर-लोक तो—‘बिन सतगुरु पावे नहीं, कोई कोटि न करे उपाय।’ इस तरह सुषुम्ना एक माध्यम है, लक्ष्य नहीं। कुछ कह रहे हैं कि सुषुम्ना ही सब कुछ है, पर गुरु नानक देव कह रहे हैं—

इड़ा पिंगला सुषुम्ना बूझे, आपे अलख लखावे।

उसके ऊपर साँचा सतगुरु, अनहद शब्द सुरति समावे॥

त्रिकाल में जितने भी ऋषि-मुनि हुए, निराकार की बात कही, तीन-लोक की बात कही, पर साहिब ने आगे की बात बतायी। गोरखनाथ पवन-योग कर रहे थे। कुछ अंदर में खोज करके सोचते हैं कि खोज हो गयी। नहीं! सुषुम्ना का ज़िक्र तो साहिब ने भी किया है। साहिब ने तो सबकी बात की है, सबका मूल्य बताया है, सबकी सीमा बतायी है। सुषुम्ना को साहिब ने माध्यम माना है, लक्ष्य नहीं। तभी तो कह रहे हैं—

इंगला विनशै पिंगला विनशै, विनशै सुषुम्न नाड़ी।

जब उनमुनि की तारी टूटै, तब कहँ रही तुम्हारी॥

जो अनहद धुनों को ही परमात्मा समझ बैठते हैं, उन्हें साहिब

ने निःशब्द शब्द का ज्ञान दिया यानी जिसमें कोई ध्वनि नहीं। जहाँ भी झंकारें हैं, वहाँ अनादि ब्रह्म की कल्पना नहीं की जा सकती। धुनें दो तत्व के टकराए बिना नहीं हो सकतीं, इसलिए परमात्मा नहीं हो सकती हैं ये धुनें।

वायु में शब्द नहीं है। कहीं पेड़ से टकराई तो आवाज़ होती है, पर हवा खुद शब्द नहीं.....केवल टकराने से ही ध्वनि हुई। हवा शब्दहीन है। शब्द किसी से टकराकर ही उत्पन्न होगा, शरीर से टकराने से भी। कानों में भी साँय-साँय होता है यानी कान से टकराई हवा, तो भी शब्द हुआ। इस तरह धुनें कतई परमात्मा नहीं हैं।

**पुरुष कहौ तो पुरुषे नाहीं। पुरुष भया माया की माहीं॥
शब्द कहौ तो शब्दै नाहीं। शब्द भया माया की छाहीं॥
दो बिना होय न अधर अवाज़। कहो कहा यह काज अकाजा॥**

दो के बिना आवाज़ नहीं हो सकती, टकराने से ही आवाज़ है। जहाँ द्वैत है, वहाँ माया है।

हम इस सफ़र में आगे चल रहे हैं। इड़ा-पिंगला में रहस्य हैं। इनके लय होते ही सुषुम्ना का सृजन है। पर इड़ा-पिंगला लक्ष्य नहीं है। पूर्ण गुरु के सान्निध्य में ध्यान करोगे तो पता चलेगा सारा रहस्य। साहिब एक जगह कह रहे हैं—

सकल पसारा मेट कर, मन पवना कर एक।

ऊँची तानो सुरति को, तहाँ देखो पुरुष अलेख॥

कह रहे हैं कि सब तरफ से ध्यान हटा लो। खेल सुरति का है। पर इड़ा-पिंगला लय हुए बिना सुषुम्ना नहीं खुल सकती।

चकमक पथरी रहत एक संग, उठत नहीं चिंगारी॥

चकमक पत्थर पड़े रहें, पर संघर्ष बिना आग उत्पन्न नहीं हो सकती है। सुषुम्ना के अंदर ही उस दुनिया का गेट है। उसके लिए इड़ा-पिंगला का लय होना ज़रूरी है। पर सुषुम्ना में ही अटके नहीं रहना है।

इंगला विनशे पिंगला विनशे, विनशे सुषुम्न नाड़ी।

जब उनमुनि की तारी टूटे, तब कहँ रही तुम्हारी॥

जब शरीर ही नष्ट हो जायेगा तो इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना भी नष्ट हो जायेंगी, तब कहाँ ध्यान रुकेगा! अतः ध्यान कहाँ रोकें, यह भी साहिब कह रहे हैं। 'ऊँची तानो सुरति को, तहाँ देखो पुरुष अलेख।' शीश से सवा हाथ ऊपर ध्यान को एकाग्र करने को कह रहे हैं। क्योंकि सुरति की नाल वहीं पर है।

सुरति कमल में सद्गुरु का वास है। जहाँ तक ध्यान का भाव है, जितने भी संसार में मत-मतांतर हैं, छः चक्र की बात की, वहाँ तक पहुँचे; कोई सातवें चक्र तक भी पहुँचा। पर ये सभी काया के अंदर हैं। फिर जो जहाँ तक पहुँचा, माया और मन के अधीन ही रहा। निःसंदेह इससे शून्य शक्तियाँ जाग सकती हैं, पर आत्म तत्व नहीं।

सब दुनिया के लोग कहीं-कहीं ध्यान रोक रहे हैं। कोई मेरुदण्ड में, कोई तीसरे तिल में, कोई सुषुम्ना में, कोई सहस्रसार में। साहिब कह रहे हैं कि ये सभी काया के अंदर है। काया के अंदर आने से माया के अंदर है। गोरख के साथ गोष्ठी में भी साहिब ने कहा—

अवधू ऐसा योग बिचारा। जो अक्षरहू सों है न्यारा।।
जौन पवन तुम गङ्ग चढ़ावो, करौ गुफा में बासा।
सोतो पवन गगन जब बिनशै, तब कह योग तमासा।।
जबहीं बिनशै इंगला पिंगला, बिनशै सुषुमन नारी।
जो उनमुनि सो नाड़ी लागी, सो कह रहै तुम्हारी।।
मेरुदण्ड में डारि दुलैचा, योगी आसन लाया।
मेरुदण्ड की खाक उठैगी, कच्चै योग कमाया.....।।

अर्थात् मौत के समय ये सभी समाप्त हो जायेंगी, यम पकड़ लेगा। फिर क्या करोगे!

‘सुरति कमल सतगुरु को वासा।’ शरीर के अंदर के चक्रों में देवताओं का वास है। अष्टदल कमल यानी मणिपुर चक्र में विष्णु जी तथा लक्ष्मी जी का वास है। द्वादश कमल, अनहद चक्र हृदय में शिवजी का वास है। इस तरह दो दल कमल, आज्ञा चक्र में आत्मा का वास है। सहस्रसार चक्र में निरंजन का वास है। सप्त चक्र पर ध्यान लगाया

योगियों ने। संतों का रहस्य और है। कह रहे हैं—‘सुरति कमल सतगुरु को वासा।’ सभी चक्र भी निरंजन की सीमा के अंदर आते हैं। इनकी प्राप्ति करने वाला सोचे कि मुक्त हो गया तो नहीं। क्योंकि—‘फिरके डार दे भूमाहीं।’ काल की शक्तियाँ नहीं छोड़ेंगी। जीवात्मा अनादिकाल से विरोधी शक्तियों के अधीन है। ‘बहु बंधन ते बाँधिया, एक विचारा जीव।’ चारों वेद भी काल की सीमा तक ही कह रहे हैं। ‘इसके आगे कोई न गयऊ।’

संतों ने इसके आगे कहा, कह रहे हैं—‘सुरति कमल सतगुरु को वासा।’ सुरति कमल में सद्गुरु का वास है। साहिब की वाणी में अष्टदल कमल का जिक्र आता है।

अष्ट कमल तोहि भेद बताऊँ। अजपा सोहं प्रगट बुझाऊँ॥
मूल कमल दल चार ठिकाना। देव गणेश तहाँ कीन्ह पयाना॥
ऋद्धि सिद्धि बासा तहँ होई। छै सौ जप अजपा तहँ सोई॥

मूल कमल, चार दल कमल, गुदा स्थान में गणेश जी का वास है। तमाम रिद्धियों, सिद्धियों का वहाँ वास है।

द्वितीय कमल षटदल परमाना। तहँ कमलन कर आहि ठिकाना॥
सावित्री ब्रह्मा है जहँ वाँ। षट सहस्र जाप है तहँ वाँ॥

छः दल कमल, शिश्न इन्द्रिय पर सावित्री और ब्रह्मा का वास है। आगे कह रहे हैं

त्रय कमल दल अष्ट है हरि लक्ष्मी तिहि संग मौँ।
षट सहस्र जहँ होई अजपा निरखि देखो अंग मौँ॥

तीसरा अष्टदल कमल, नाभि स्थान में, जहाँ विष्णु जी और लक्ष्मी जी का वास है।

कमल चौथा द्वादश दल शिव को तहाँ निवासु हो।

सुरति निरति करि लोक पहुँचै षट सहस्र जहाँ जासु हो॥

चौथा 12 दल कमल, हृदय में, शिव जी का वास है।

पंचये कमल प्रकाश, तिहिं षोडश दल अहै॥

आतम जीव निवास, कइ सहस्र अजपा कह्यो॥

पाँचवाँ 16 दल कमल, आज्ञा चक्र है, जहाँ आत्मा का वास है।
छठवाँ कमल अहै दल तीनी। सरस्वती तहाँ वासा कीनी॥
दोसौ एक अजपा जहाँ होई। बूझो भेद सो बिरला कोई॥

छठा तीन दल कमल, कण्ठ स्थान में है, जहाँ सरस्वती का वास है।
भौर गुफा दो जल परवाना। सातों कमल को आहि ठिकाना॥
एक सहस्र अजपा परकाशा। तहाँ बोलता ब्रह्म को वासा॥
तहाँ जोग साधे बहु जोगी। इंगला पिंगला सुखमनि भोगी॥
तहाँ देख असंख्य जो फूला। ब्रह्म थाप काया में भूला॥

सातवाँ सात दल कमल, सहस्रसार चक्र है, जहाँ शुद्ध ब्रह्म
निरंजन का वास है। इस सात चक्रों का भेद ही सब कोई जानते हैं, पर
साहिब इससे आगे कह रहे हैं—

सात कमल जाने सब कोई। अष्टम कमल बिनु मुक्ति न होई॥
बिनु सतगुरु को भेद बतावै। नाम प्रताप जोगहि आवै॥
काया तें जो बाहिर होई। भाग जीव पावै पुनि सोई॥

साहिब कह रहे हैं कि सात चक्रों का भेद तो सब कोई जानता
है, पर अष्टम चक्र के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। उस अष्टम चक्र का
भेद सद्गुरु के बिना कोई नहीं दे सकता।

पक्षी भाग नयन जिन पावै। ताके जहाँ तहाँ उड़ जावै॥
देखे लोक जो गुरु बतावै। पक्षी नयन को यहै स्वभावै॥
अथवा नाम नेक जो पावै। साधे तत्व जो लोक सिधावै॥
नाम नयन पक्षी जो होई। तेहि समान दूसर नहिं कोई॥
बाहिर को मैं कहब ठिकाना। सुरति कमल सतगुरु निरवाना॥
छः सौ एक एकसौ बीसा। अजपा ऊपर देखे ईसा॥
सात दल कमल देव ऋषि माना। अष्ट कमल उनहूँ नहिं जाना॥

नाम रूप नयन जिस हंस के पास आ जाते हैं, वो जहाँ चाहे उड़
सकता है; जो लोक गुरु उसे दिखाता है, देख लेता है। उसके समान
दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसलिए सुरति कमल, जहाँ सद्गुरु का वास
है, मैं ध्यान लगाकर ही जीव निर्वाण पद की प्राप्ति कर सकता है।

साहिब कहते हैं कि सात दल कमल, सात चक्र तक देव, ऋषि आदि मानते हैं, पर उसके ऊपर आठवाँ चक्र उन्होंने नहीं जाना।

देखते हैं, यहाँ पर वो शक्तियाँ कैसी हैं ! हमारा देश कृषि प्रधान है। बीज को ज़मीन में छोड़ते हैं। ज़मीन में ताक़त है कि बीज को अंकुरित करे। आपकी समस्या नहीं है कि कैसे होगा ! अंकुरित कैसे होगा, पत्तियाँ कैसे आयेंगी, कैसे फल आयेगा ! नहीं। यह गुण स्वतः मिट्टी के अंदर है। मिट्टी अंकुरित कर देगी। **‘सुरति कमल सतगुरु को वासा।’** आपका ध्यान वहाँ पहुँचेगा तो बाकी वो खुद कर लेगा। वो वहाँ बैठा है।

मानव तन को दुर्लभ कहा गया। इसके पीछे कारण है। रहस्य है कि काफी सिस्टम मानव तन से जुड़े हैं। जैसे टावर है। कई अंटीना जुड़े हैं। इस तरह मानव मस्तिष्क से कई अंटीना जुड़े हैं, जिनके द्वारा शक्ति शरीर में आ रही है।

‘सुरति कमल सतगुरु को वासा।’ साहिब ने आकर यहाँ ध्यान रोकने को कहा। पहले कोई कहीं रोके जा रहा था, कोई कहीं। अब भी सब ऐसे ही लगे हैं। कुछ को तो पता ही नहीं है। जिनको जानकारी है, उन्हें सुरति कमल की जानकारी नहीं। पर साहिब ध्यान के सिद्धांत को अलग बता रहे हैं।

सकल पसारा मेट कर, गुरु में देय समाय।

कहैं कबीर धर्मदास से, अगम पंथ लखाय॥

हम जिसका भी ध्यान करते हैं, उसकी वृत्तियाँ, उसके गुण हमारे भीतर आ जाते हैं। जैसे बीज में प्रस्फुटनशीलता का गुण है, उसका प्रस्फुटन होता है, पर उसे विकसित करने के लिए प्लावन और सींचने की आवश्यकता होती है। लेकिन यदि किसी बंद कमरे में बीज बो दिया जाए तो वो प्रस्फुटित नहीं हो पाता, चाहे उसकी कितनी भी सिंचाई कर लो, क्योंकि उसे सूर्य का प्रकाश नहीं मिल पाता है।

इस सुरति में सब कुछ है। बस इसे अंकुरित करने की जरूरत है। इस पर मन-माया का आवरण पड़ा हुआ है, जिससे यह कुंद हो चुकी

है। यह अंकुरित होती है, गुरु की सुरति से। इसी कारण हमारे शास्त्रों में भी गुरु का ध्यान करने को कहा गया है। कहीं पर भी परमात्मा का ध्यान करने को नहीं कहा गया।

हम उसी का ध्यान कर सकते हैं, जिसे हमने कभी देखा हो। जिसे हमने कभी देखा नहीं, उसका ध्यान नहीं कर पायेंगे। इसलिए परमात्मा का ध्यान संभव नहीं, क्योंकि हमने उसे नहीं देखा। उसका ध्यान करना तो सूर्य पर पत्थर फेंकने की तरह है, जिसका कोई लाभ नहीं है। बेकार है उसका ध्यान करना। इसलिए हमें सब संशय छोड़कर गुरु का ही ध्यान करना चाहिए। वास्तव में गुरु परमात्मा का प्रतिनिधि है, परमात्मा उसमें प्रगट है।

अलख पुरुष की आरसी, संतन की ही देह।

लखा जो चाहे अलख को, इन्हीं में लख लेह॥

गुरु का महत्व प्रत्येक धर्म-शास्त्र में है। हमारे धर्म-शास्त्रों में भी गुरु को गोविंद के समान मानकर उसी के ध्यान की महिमा गाई है।

ध्यान मूलम् गुरु रूपम्, पूजा मूलम् गुरु पादकम्।

मंत्र मूलम् गुरु वाक्यम्, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा॥

परमात्मा का ध्यान करने को नहीं कह रहे, गुरु का ध्यान करने को कह रहे हैं। कह रहे हैं कि गुरु के ध्यान से बढ़कर कोई ध्यान नहीं है, गुरु की पूजा से बढ़कर कोई पूजा नहीं है, गुरु-वाक्य से बड़ा कोई मंत्र नहीं है और फिर गुरु की कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। कितनी बड़ी बात हमारे धर्म-शास्त्र कह रहे हैं। परमात्मा की कृपा की बात नहीं कर रहे हैं, गुरु की कृपा को महत्व दे रहे हैं। संतों ने भी यही कहा है-

हरि कृपा जो होय तो, नहीं होय तो नाहिं।

कहैं कबीर गुरु कृपा बिन, सकल बुद्धि बह जाहिं॥

कह रहे हैं कि ईश्वर की कृपा हो जाए तो ठीक है। यदि नहीं हो तो भी कोई बात नहीं, लेकिन गुरु की कृपा होना जरूरी है। उसके बिना काम नहीं चल सकता।

इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा की कोई कीमत नहीं है। लेकिन बात यह है कि गुरु परमात्मा से बढ़कर है। आखिर कैसे?

जैसे समुद्र का पानी खारा है। उसका जल पीने के लायक नहीं है। पर जब वही जल वाष्पीकृत होकर बादलों द्वारा नीचे आता है तो सबके लिए हितकारी बन जाता है। वही जल मीठा हो जाता है। वही जल खेतों के लिए उपयोगी है। जल तो उसी समुद्र का है पर अन्तर केवल इतना है कि जब बादलों द्वारा वो नीचे आता है तो बड़ा हितकारी बन जाता है। समुद्र का जल वैसे एक तो हितकारी नहीं, पर दूसरों तक अपना जल पहुँचाने में भी समुद्र सक्षम नहीं।

इस तरह एक चंदन का पेड़ है। उसकी बड़ी महक है, पर वो स्वयं अपनी महक दूसरों तक पहुँचाने में सक्षम नहीं है। समीर (वायु) उसकी महक को अपने में समेटती है और दूर-दूर तक ले जाती है। ठीक इसी तरह गुरु और परमात्मा का अन्तर है। जैसे बादल द्वारा जो जल आया, वो समुद्र के जल का संशोधित रूप था, इसी तरह गुरु परमात्मा का संशोधित रूप है। यदि साधारण शब्दों में कहा जाए तो परम सत्ता स्वयं जीवों को छुड़ाने में सक्षम नहीं है, इसलिए वो चंदन के पेड़ की तरह है, जबकि गुरु उस समीर की तरह है, जो परम सत्ता की महक, परम सत्ता का प्रकाश घट-घट में प्रकट कर देते हैं। बुल्लेशाह जी कह रहे हैं-

ना रब्ब मैं तीर्था दीद्या, ना रोजा नमाजे।

बुल्लेशाह नू मुर्शिद मिलया, अन्दरों रब्ब लखाया॥

साहिब ने ऐसे ही नहीं कहा-

गुरु हैं बड़े गोविंद ते, मन में देख विचार।

हरि सुमिरै सो बार है, गुरु सुमिरै सो पार॥

इसलिए परमात्मा के दरबार में संत सद्गुरु ही सर्वेसर्वा हैं। संतों ने तो गुरु को बराबरी में भी खड़ा नहीं किया, बल्कि बड़ा कहा। इसलिए यह तो तय है कि गुरु का ध्यान ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि-

गुरु के सुमिरन मात्र से, विनशत विघ्न अनन्त।

ताते सर्वा रंभ में, ध्यावत हैं सब संत॥

संत सद्गुरु का ध्यान करने से ही हमें आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति होती है। याद रहे, किसी तप से, किसी योग से ये शक्तियाँ हमें नहीं मिल सकती हैं। योग से केवल दिव्य शक्तियों की प्राप्ति हो सकती है, आध्यात्मिक शक्तियों की नहीं। वास्तव में जब भी हम महापुरुषों के पास जाते हैं, संत-सद्गुरुओं के पास जाते हैं तो तीन तरह से परम सत्ता की किरणें या दूसरे शब्दों में परमात्म-शक्तियाँ हमें मिलती हैं। पहले वाणी द्वारा। जब भी हम महापुरुषों के सत्संग में जाते हैं तो सबसे पहले जब हम उनकी वाणी को ध्यान लगा कर सुनते हैं तो ये शक्तियाँ हमें मिलती हैं। जैसे तार पर चलती हुई बिजली हमारे कमरे तक आ जाती है, इसी तरह संत-महापुरुषों की वाणी पर ये शक्तियाँ चलती हुई हम तक पहुँच जाती हैं। दूसरे दृष्टि द्वारा भी ये आध्यात्मिक शक्तियाँ हमारे पास पहुँचती हैं। संत महापुरुषों की बंदगी के समय उनके साथ दृष्टि मिलाने से भी यही तात्पर्य है कि वे अपनी दृष्टि द्वार हमें आध्यात्मिक शक्तियाँ प्रदान करें। जब भी हम महापुरुषों के दर्शन को जाते हैं तो सर्वप्रथम उनसे दृष्टि मिलाने का प्रयास करते हैं और चाहते हैं कि उनकी दृष्टि हम पर पड़े। इसलिए यदि दृष्टि न मिले तो समझो कि दर्शन हुए ही नहीं। फिर तीसरे स्पर्श से भी ये शक्तियाँ हमें मिलती हैं। कहीं भी स्पर्श करके ये शक्तियाँ ली जा सकती हैं, पर अदब के लिए केवल पाँव छूना ही नियम बना दिया गया।

महापुरुषों के पास जाने मात्र से हमें इतनी शक्तियाँ मिल जाती हैं। इसी तरह ध्यान से भी ये शक्तियाँ हमें मिलती हैं। जिन स्थितियों में हम गुरु का दर्शन नहीं कर पाते हैं, उन स्थितियों में हमें गुरु का ध्यान करना चाहिए। संभव हो सके तो गुरु का दर्शन करके सीधे ये शक्तियाँ लेनी चाहिए, पर यदि ऐसा संभव नहीं हो सके तो फिर उसका विकल्प है-ध्यान। यह ध्यान, यह सुरति बड़ी ही लाजवाब चीज है। हमारी सुरति जितनी देर तक जिसमें रम जाती है, हम भी उतनी देर के लिए वैसे ही हो जाते हैं। यदि हमारी सुरति थोड़ी देर के लिए क्रोध की ओर जायेगी तो हम भी उतनी देर के लिए क्रोधमय हो जायेंगे। यदि यह सुरति आनन्द

की तरफ जायेगी तो हम भी आनन्दमय हो जायेंगे। इसी तरह सद्गुरु की लगातार सुरति करने से हम भी उनकी तरह हो जायेंगे।

ध्यान में बड़ी ताकत है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य भी है कि हम जिस भी चीज को स्पर्श करते हैं, उसकी शक्तियाँ, उसके गुण हमारे अन्दर आ जाते हैं। यदि हम किसी गंदी वस्तु को छू लेते हैं तो गंदगी के कण ही हमारे साथ में लगेंगे। इसी तरह हम जिस किसी का भी ध्यान करते हैं, उसकी वृत्तियाँ, उसके गुण, उसकी शक्तियाँ भी हमारे अन्दर आ जाती हैं। गुरु जनों का ध्यान करने से हमें आध्यात्मिक शक्तियाँ मिलती हैं। सद्गुरु का लगातार ध्यान करने से मन का बज्रू ही खत्म हो जाता है।

कुछ भक्तिजन सीधे परमात्मा का ध्यान करके ये शक्तियाँ लेने का प्रयत्न करते हैं। परमात्मा के पास बड़ी अद्भुत शक्तियाँ हैं, लेकिन यह आदमी परमात्मा को जानता ही नहीं, फिर कैसे हो। उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है, इसलिए उसका ध्यान नहीं किया जा सकता है। कल्पना करके वैसा रूप तैयार नहीं किया जा सकता। वो तो शब्दातीत है, अक्षरातीत है, वाणी से परे है, फिर उसका ध्यान कैसे हो। जो पहुँचा जानेगा वोही, कहन सुनन से न्यारा है।।

इसलिए परमात्मा का ध्यान ब्रह्माण्ड में कोई नहीं कर सकता है। शास्त्रों ने भी परमात्मा का ध्यान उत्तम नहीं माना है। गुरु का ध्यान ही उत्तम माना है। जब हम सद्गुरु का ध्यान करते हैं तो भी हमें परमात्मा की अद्भुत ताकत मिलती है। इसलिए हमें सब संशय छोड़कर केवल गुरु का ही ध्यान करना चाहिए।



कैसे होगा आत्म साक्षात्कार

सभी आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि आत्मा को जानें, पर आत्मा अनुभव नहीं हो रही है, दिखाई भी नहीं दे रही है। शास्त्राकारों ने जो वर्णन किया है, उसके अनुसार तो आत्मा किसी भी देश, काल और अवस्था में नाश नहीं है। जब चिंतन करें तो पता चलता है कि यह घोर आश्चर्य है। आत्मा के ज्ञान बिना मानव जगह-जगह सिर पटक रहा है।

आत्मज्ञान बिना नर भटके, क्या मथुरा क्या काशी।।

इस तरह आत्मतत्त्व गौण है, पता नहीं चल रहा है। हम सब जाने-अनजाने कह तो रहे हैं कि मन-माया के बीच फँसे हैं, इसलिए छूटना भी चाह रहे हैं, निकलना चाह रहे हैं, चाह रहे हैं कि अपने को जानें। सभी कह रहे हैं कि आत्मा का साक्षात्कार करना है। आत्मा क्यों नहीं दिख रही है? इस बात को जानने की आवश्यकता है। आओ, देखते हैं, समझते हैं कि आत्मा का पता कैसे चले, आत्मा का बोध कैसे हो।

सुरति और निरति के मिलने से आत्मतत्त्व का पता चल जायेगा। फिर क्या है सुरति और क्या है निरति? ये कैसे मिलें? आओ, इस ओर चलते हैं।

जैसा कि पहले कहा कि अगर बाहरी दृष्टि से भी देखें तो पता चलता है कि सुरति विशेष चीज है। हम सब बाहरी कामों को करने के लिए सुरति का इस्तेमाल करते हैं। दुनिया के जितने भी कार्य हम करते

हैं, उनमें सुरति चाहिए। बोलना हो, सुनना हो, चलना हो या कोई अन्य कार्य करना हो, सुरति नितान्त आवश्यक है। इसी सुरति का दूसरा नाम ध्यान है। यदि एक्सीडेंट हो जाए तो ड्राइवर को यही कहते हैं कि भाई, ध्यान कहाँ था? इसी ध्यान या सुरति का दूसरा हिस्सा है—निरति। निरति शरीर में फँसी हुई है। यह शरीर को चलाने वाली शक्ति है। हाथ जो चल रहे हैं, निरति है। निरति का ही नाम है—जीव। निरति का वास आँखों के पीछे है, पवन में समायी है। श्वास खुद-ब-खुद नहीं चल रही है, लगेगा कि कोई ले रहा है और छोड़ रहा है। इस क्रिया को करने वाला है—निरति। यही है—जीव। इसी श्वास से पूरा शरीर चेतन है। इसी में निरति है। यह स्वाँसा द्वारा 9 नाड़ियों में से 72 नाड़ियों में, फिर पूरे जिस्म में फैली है। स्वाँसा में आपकी हाजिरी है। कोई मर गया तो कहते हैं कि यम प्राण निकालकर ले गया। यानी वायु में आत्मा का वास है।

तो निरति स्वाँसा द्वारा शरीर में समाई हुई है जबकि सुरति मन के साथ बाहर घूम रही है। इस तरह सुरति को मन ने और निरति को माया ने पकड़ रखा है। ये दोनों को एक नहीं होने दे रहे हैं। इन्हीं को एक करने के लिए ध्यान किया जा रहा है। जब ये दोनों मिल जायेंगे तो आत्म-साक्षात्कार हो जायेगा। ध्यान एकाग्र करने से यही तात्पर्य है कि किसी बिंदु पर पूर्ण रूप से सुरति और निरति को क्रमशः बाहरी जगत से और शरीर से निकालकर एकाग्र किया जाए। ध्यान एकाग्र करने से यही तात्पर्य है कि किसी बिंदु पर पूर्ण रूप से सुरति और निरति को इकट्ठा करके एकाग्र किया जाए।

अब मन ने कैसे पकड़ा सुरति को? मन के चार रूप हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। जब यह संकल्प करता है तो इसे मन कहते हैं। इच्छाएँ आत्मा की नहीं हैं, शरीर और मन की आवश्यकता है। कोई निश्चय करने पर यही मन बुद्धि कहलाता है। मान लो, मन ने इच्छा की कि कमरा बनाना है। फिर बुद्धि इस पर निश्चय करती है कि बनाएँ

या नहीं, पैसा है या नहीं। मान लो, बुद्धि ने हाँ कर दी, तो फिर तीसरा रूप चित्त सक्रिय हो जाता है। चित्त बताना शुरू करता है कि लेबर वहाँ फलानी जगह मिलेगी, सीमेंट वहाँ मिलेगा, रेत, बजरी के लिए फलाने को आर्डर देना है। जब हम चलकर वहाँ जाते हैं तो वो मन का चौथा रूप अहंकार कहलाता है। इसलिए जितनी भी अनुभूतियाँ हैं—मेरा घर, मेरे बच्चे, यह सब मन है।

सुरति ध्यान है। कभी यह ध्यान इच्छाओं में, कभी निश्चय में, कभी याद में लगा रहता है। बस, ऐसे ही उलझा रहा है मन आत्मा को। मन ही इच्छा करता है। मन और इंद्रियों की साँठ-गाँठ है। ये मिलकर आत्मा को परेशान कर रहे हैं। **इन सब मिल जिव को घेरा ॥**

आत्मा का जिन कर्मों से कोई संबंध नहीं है, वो किये जा रही है। जो भी काम हो रहे हैं, शरीर के निमित्त ही। खेती-बाड़ी का आत्मा से क्या संबंध। जितने भी कर्म हैं, लक्ष्य एक ही है, शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति। इन सब कर्मों में आत्मा भी शामिल हो गयी। आत्मा ने अपने को शरीर माना। यही अज्ञान है। आत्मा में इंद्रियाँ ही नहीं हैं। आत्मा का भोग-विलास से क्या संबंध। किसी से कोई संबंध नहीं है आत्मा का, पर आत्मा इन कामों में प्रविष्ट हो रही है। जैसे मकान खड़ा है तो नींव आधार है, इसी तरह अज्ञान ही इस संसार का आधार है। ज्ञान हो जाने पर संसार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। वशिष्ठ मुनि से जब राम जी ने संसार के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—हे राम, किस संसार की बात कर रहे हो। संसार कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है। यह तुम्हारे चित्त का परिणाम है। चित्त का निग्रह करो, संसार का अस्तित्व ही मिट जायेगा। जो कुछ भी हम अनुभव कर रहे हैं, मन है। 24 घंटे मन आत्मा को भरमा रहा है। ज्ञान की प्राप्ति के बाद संसार का अस्तित्व उसी प्रकार समाप्त हो जाता है, जैसे रस्सी को साँप समझ लेने का भ्रम।

मन 24 घंटे आत्मा को भ्रमित किये हुए है। आखिर क्यों? क्योंकि जितने भी काम हैं, उनमें आत्मा की उर्जा चाहिए। यदि आत्मतत्त्व को निकाल दो तो संसार में कुछ नहीं होगा, वीरान हो जाएगा संसार। यदि सब आत्मनिष्ठ हो जाएँ तो कैसा होगा। कोई काम नहीं करेगा फिर। क्योंकि तब आत्मा को पता चल जाता है कि संसार का कोई भी पदार्थ उस तक नहीं पहुँच सकता, उसे किसी चीज की जरूरत नहीं है। इसलिए मन इसे भ्रमित किये हुए है।

मन बेहद गंदी चीज है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मन की वृत्तियाँ हैं। ये पाँचों बड़ी गंदी चीजें हैं। ये मन की सहायक हैं। ये जगत के आधार हैं। ये ही शस्त्र हैं। इन्हीं से मन आत्मा पर वार करता है।

जैसे बुखार पकड़ लेता है तो मुख कड़वा हो जाता है, इसी तरह मन ने सुरति को पकड़ा हुआ है। पूरी दुनिया मन की तरंग में उलझी हुई है। सृजन को स्थिर रखने के लिए मन ने काम, क्रोध आदि को उत्पन्न किया। यदि काम न होता तो न ही विषय-विकार होते और न ही सृजन आगे बढ़ता। यदि लोभ न होता तो कोई संग्रह ही नहीं करता। मोह नहीं होता तो कोई किसी को न पालता। जंगल में छोड़ देते तब माँ-बाप अपने बच्चों को या नदी में बहा देते।

जिस तरह पिंजरे का हरेक तार पंछी को कैद करने के लिए है, इसी तरह मन की प्रत्येक वृत्ति आत्मा को कैद करने के लिए है। ये सब मिलकर सुरति को बाहर उलझाए हुए हैं। दूसरी ओर निरति माया के साथ उलझी है। वो श्वास के साथ इंद्रियों में उलझी है। शरीर में सार ही श्वास है। गोरखनाथ की कबीर साहिब से गोष्ठी हुई तो गोरखनाथ ने फूँ—

गोरख : काया मध्ये सार क्या ?

साहिब : काया मध्ये श्वासा सार।

गोरख : कहाँ से उठत है, कहाँ को जाय समाय ?

साहिब : शून्य से उठत है, नाभि दल में आय ।

गोरख : हाथ पाँव इसके नहीं, कैसे पकड़ी जाय ?

साहिब : हाथ पाँव इसके नहीं, सुरति से पकड़ी जाय ।

सुरति के दंड से, घेर मन पवन को, फेर उलटा चले.... ।।

सुरति और निरति का मेल नहीं हो रहा है, तभी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो रहा है । यह बहुत बड़ा रहस्य है । असल में श्वास शून्य से नाभि में चक्कर काट रही है । इसे ऊपर की ओर पलटना है, तभी सुरति और निरति का मेल हो पायेगा । गोस्वामी जी भी कह रहे हैं—

उलटा जाप जपा जब जाना, बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ।।

पलटू साहिब भी तो यही कह रहे हैं—

अरे हाँ रे पलटू, ज्ञान भूमि के मध्य चलत तहँ उलटी स्वाँसा ।।

इस श्वास को शीश से सवा हाथ ऊपर शून्य की ओर ले जाना है । अभी तो यह आदत नहीं है, पर धीरे-धीरे आदत हो जाने से सहज हो जायेगा । यहाँ साहिब कह रहे हैं—

पवन को पलट कर, शून्य में घर किया, धर में अधर भरपूर देखा ।

कहैं कबीर गुरु पूरे की मेहर से, त्रिकुटि मध्य दीदार देखा ।।

ध्यान रहे कि सुरति के द्वारा श्वास ऊपर की ओर चलेगी । इसलिए—

सकल पसारा मेटि कर, मन पवना कर एक ।

ऊँची तानो सुरति को, तहाँ देखो पुरुष अलेख ।।

जब श्वास ठीक ऊपर की ओर चलेगी तो शरीर खाली होने लगेगा, सुरति और निरति मिलने लगेंगी । ऐसे समय में मन चालाकी से सुरति को दूसरी जगह ले जायेगा और उसी समय निरति नीचे नाभि में आ जायेगी, क्योंकि वो श्वास में है और श्वास सुरति के सहारे ही ऊपर जा रही थी । अतः सारा खेल ही समाप्त हो जायेगा । इसलिए साहिब कह

रहे हैं—

पल पल सुरति संभाल ॥

सुरति के सहारे ही निरति ऊपर की ओर चलेगी।

सुरति के दंड से घेर मन पवन को, फेर उलटा चले ॥

वाह, मन को क्यों घेरना? क्योंकि यह सुरति के अन्दर, निरति के अन्दर समाया हुआ है। सुरति और स्वाँसा एक कर दोगे तो स्वाँसा अष्टमचक्र की ओर चलने लगेगी। ऐसे में सुरति का सिमटाव होने लगता है। मन ऐसा नहीं होने देता है। वो सुरति को चुपके से हटा देता है। जब नाभि में स्वाँसा गिरेगी तो पता है क्या होगा। स्वाँस के गिरते ही निरति बिखर जायेगी, शरीर में समा जायेगी। अब जब समा गयी तो सुरति का शुद्ध रूप नहीं मिल पायेगा। वास्तविक रूप दोनों के मिलने के बाद मिलेगा।

तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरति निरति थिर होय।

कहैं कबीर वा पलक को, कल्प न पावै कोय ॥

वो एक पल कल्पांतर की साधना से ही उत्तम है। पर यह पल इतनी आसानी से आता नहीं है।

इंड़ा पिंगला चलती हैं तो साँस नाभि में आती है। इड़ा बायां स्वर है और पिंगला दायां स्वर है। जब दोनों बंद होगी तो सुषुम्ना खुलेगी। इसी को कह रहे हैं—

बाहर का पट बंद कर, अन्दर का पट खोल ॥

इंड़ा पिंगला के मध्य सुषुम्ना से होती हुई श्वास शीश से सवा हाथ ऊपर शून्य की ओर चलेगी, जहाँ सुरति और निरति का मेल होना है, पर मन की चेष्टा होगी कि सुरति और निरति न मिल पाएँ। वो ध्यान को हटाएगा, भगाएगा कहीं ओर। मत सोचना कि अब यह दिखे, वो दिखे। देखते रहो कि मन कहाँ जा रहा है। क्योंकि इसी को नियंत्रित करके तो आत्म-साक्षात्कार होगा।

राजा जनक द्वारा आत्म-ज्ञान माँगने पर अष्टावक्र ने उनसे कहा— मैं तुम्हें दो मिनट में आत्मज्ञान देता हूँ, पर अपना तन, मन, धन मुझे दे दो। राजा जनक ने कहा—दिया। अष्टावक्र ने कहा कि आज से तुम्हारा मन मेरा है, तुम्हारा तन मेरा है और धन भी मेरा है। इसलिए हम आज्ञा देते हैं कि मन से कोई इच्छा नहीं करना, बुद्धि से कोई फैसला नहीं करना और चित्त से कुछ याद नहीं करना और अहंकार में आकर कोई क्रिया नहीं करना। फिर कहा—आँखें बंद करो। राजा जनक ने आँखें बंद की। अष्टावक्र ने पूछा—कुछ पता चला। राजा ने कहा—हाँ, अनुभव हो गया।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का निग्रह करने के बाद जो बचता है, वो ही आत्मा है। राजा जनक पात्र थे, इसलिए दिखा दिया।

....इस तरह जैसे-जैसे मन एकाग्र होता जाएगा, शरीर खाली होता जाएगा। शरीर स्वांस के बिना मुरझाने लगता है। यह चेतन ही स्वांसा से है। मन स्वांस को नीचे लाने लगता है। तब चाहोगे कि हिलूँ तो नहीं हिल पाओगे। यह तो पता चलेगा कि हाथ यहाँ हैं, पैर यहाँ हैं, पर आज्ञा नहीं मानेंगे। ऐसे में मन डरायेगा कि शरीर नहीं मिलेगा। बड़े-बड़े यहाँ पर डर जाते हैं और शरीर के विषय में सोचने लगते हैं। फिर लगेगा कि घोर अँधकार में सिमटता जा रहा हूँ। हरेक को शरीर से महोब्बत है। कुछ शरीर को बलात ढूँढ़ने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे लगेगा कि केवल स्वांस हूँ। मन स्वांस को नाभि में लाकर आपको तंग करना चाहता है, हताश करना चाहता है, पर लगे रहना। जैसे ही शीश से सवा हाथ ऊपर शून्य में स्थित हो जाती है स्वांस, इसी को कह रहे हैं—

शून्य महल चढ़ बीन बजाय, खुले द्वार सतघर की॥

जब शून्य पलटने लगती है तो अपना वजूद भी मिटने लगता है। जो यह अनुभूति है कि फलाना हूँ.....भूलने लगता है। जैसे ही शून्य पलटती है तो आत्म-साक्षात्कार हो जाता है।



साहिब की वाणी

हंसा यह पिंजड़ा नहीं तेरा

यह पिंजड़ा नहीं तेरा हंसा, यह पिंजड़ा नहीं तेरा ॥
कंकड़ चुनि चुनि महल बनाया, लोग कहे घर मेरा।
ना घर तेरा ना घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा ॥
बाबा दादा भाई भतीजा, कोई न चले संग तेरा।
हाथी घोड़ा माल खजाना, पड़ा रहे धन घेरा ॥
मात पिता स्वारथ के लोभी, करते मेरा मेरा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधु, इक दिन जंगल डेरा ॥

—कबीर साहिब

हे हंसा, यह शरीर रूपी पिंजड़ा तुम्हारा नहीं है। लोग इस संसार में कंकड़-पत्थर चुन-चुनकर महल बनाते हैं और फिर कहते हैं कि हमारा घर है। पर साहिब कह रहे हैं कि यहाँ किसी का कोई घर नहीं है। यहाँ तो सब भटकी हुई चिड़िया के रैन बसेरे की तरह बैठे हुए हैं, जिन्हें भोर होते ही अपने घर उड़ जाना होगा। बाबा, दादा, भाई, भतीजा आदि रिश्तेदारों में से कोई भी साथ में नहीं चलेगा। हाथी, घोड़े, रूपया-पैसा आदि सब यहीं पर पड़ा रह जायेगा। माता-पिता सब स्वार्थ के कारण ही तुम्हें अपना पुत्र कह रहे हैं, पर एक दिन तो तुम्हें शरीर छूटने के बाद जंगल में जाकर डेरा जमाना पड़ेगा।

भृंग दी गति गहो रे बंदे

भृंग दी गति गहो रे बंदे ॥
 कीन्ही कीट कर्म से कीड़ा, भृंगी नाम सुनाया वे ।
 सरवन सब्द नाद तब निरखा, अपना रूप बनाया वे ॥
 यहि विधि संत अंत मत मारग, अन्दर अधर मिलाया ।
 सादर सुत मरत को तजि के, भज भव भर्म छुड़ाया ॥
 सतगुरु दया भया मन दृढ़ के, जब हिये हर्ष जुड़ाया वे ।
 सिंध बिच बुन्द धसा सुन्दर में, आपहि आप कहाया वे ॥
 मेहर मलूक ऊख रस प्याला, मुरसिद घोट पिलाया ।
 अन्दर अमल अरस में भीने, हो आसिक अस आया ॥
 भृंगी कहन कीट नहिं माने, मूरख मर्म न पाया वे ।
 सतसंग समझ रमज नहिं बूझो, जुग जुग जन्म बुड़ाया वे ॥
 अन्ध असार सार सुधि भूले, पार परख नहिं पाया ।
 जग रस रंग संग में उरझो, बादै जन्म गँवाया ॥
 अलल पच्छ पच्छिम के माहीं, उलट अकास समाया वे ।
 भुँड़ पर आय धाय धुर पहुँचा, जब अपनी सुधि लाया वे ॥
 जब परिवार परख घर अपना, सुत पित मात समाया ।
 जीव तजे जड़ताई तुलसी, जब वह ब्रह्म कहाया ॥

—तुलसी साहिब (हाथरस वाले)

कह रहे हैं कि भृंगी वाली बात समझो और सद्गुरु में ध्यान लगाओ । जैसे भृंगी कीड़े को अपना शब्द सुनाकर उसका वर्ण पलट कर अपने समान कर लेता है, ऐसे ही सद्गुरु भी अपने समान कर लेता है । पर दूसरी ओर यदि कीड़ा भृंगी का शब्द नहीं सुनता है तो उसकी तरह नहीं हो पाता है । ऐसे ही यदि संत के सत्संग में आकर उसकी वाणी को समझकर विचार नहीं करता है, उनके नाम की परख नहीं जानता है तो

बेकार में ही जन्म गँवाता है। पर जब नाम मिल जाता है तो अनल पछी की तरह खुद ही अपने घर की ओर चल पड़ता है और उस परम सत्ता में जाकर समा जाता है।

सुरति से देखि ले वहि देस

सुरति से देखि ले वहि देस ॥
 देखत देखत दीसन लागे, मिटिगे सकल अँदेस ॥
 वहँ नहिं चन्द वहाँ नहिं सूरज, नाहिं पवन परवेस ॥
 वहँ नहिं जाप वहाँ नहिं अजपा, निःअच्छर परबेस ॥
 वहँ के गये बहुरि नहिं आये, नहिं कोउ कहा सँदेस ॥
 कहै कबीर सुनो भाई साधो, गहु सतगुरु उपदेस ॥

—कबीर साहिब

कह रहे हैं कि सुरति से उस अमर-लोक को देख लो। वहाँ चाँद, सूर्य आदि कुछ भी नहीं है। वहाँ जाप, अजपा की स्थिति भी नहीं है। वहाँ जाकर फिर वापिस नहीं आना है। लेकिन वहाँ का संदेश कोई नहीं देता है। साहिब कह रहे हैं कि मेरी बात को सुनकर उसपर विचार करो और सद्गुरु का उपदेश ग्रहण करो।

चल सतगुरु के महल

अगम गली गम सार पार चढ़ि पेखिये।
 जहँ सतगुरु के बैन नैन नित देखिये ॥
 चल सतगुरु के महल टहल तहँ कीजिये।
 जीवन जनम सुधार सार करि लीजिये ॥
 सखि सुखमनि घर घाट बाट पिया की लखो।
 तोड़ो यम के दंत संत सरना तको ॥
 पिय बिन ध्रिग संसार जार जग जोर है।
 ध्रिग जीवन बिन बास पास पिया को कहै ॥

सतगुरु संत दयाल जाल यम काटिहैं ।
 करिहैं भव जल पार ठाठ सब ठाठिहैं ॥
 सुरति संध सुधार पंथ पिया पाइया ।
 तुलसी तत मत सार सुरति गति गाइया ॥

—तुलसी साहिब (हाथरस वाले)

अध्यात्मि खेल का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि सुषुम्ना के घाट पर जाकर सद्गुरु रूपी प्रियतम की राह देखो, जिससे काल का जाल कट जाए। सद्गुरु रूपी प्रियतम के बिना इस जीवन को धिक्कार है। संत सद्गुरु ही काल का जाल काट सकते हैं, इसलिए सुरति उन्हीं के साथ जोड़ो।

सुरति निरत दोउ मतो करत है

सुरति निरत दोउ मतो करत हैं, चलो सतगुरु पै जइये हो ॥
 सतगुरु चीन्हि चरन चित लैये, दृष्टि से दृष्टि मिलइये हो ॥
 सतगुरु साह साध सौदागर, भक्ति पटो लिखवइये हो ॥
 मन मानिक की खुली किवरियाँ, चढ़ गइ झमकि अटरिया हो ॥
 नहिं वहँ डोरि नहिं वहँ रसरी, अमर लोक कस पइये हो ॥
 है वहँ डोरि सुरति कर सोझी, गुरु के शब्द चढ़ि जइयो हो ॥
 घर है रमनी मेरो बगर रमानो, फूल रही फुल बगिया हो ॥
 अछै कमल पर बहै सुरसरि, तहँ बैठ हंस नहइये हो ॥
 धरमदास की अरज गुसाई, आवागमन मिटइये हो ॥

—धर्मदास जी

आध्यात्मिक खेल का वर्णन करते हुए धर्मदास जी कह रहे हैं कि सुरति और निरति दोनों सलाह करती हैं कि सद्गुरु के पास चलते हैं, सद्गुरु को पहचान कर उनके चरणों में रहेंगी और उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलायेंगी। सद्गुरु तो भक्ति का सौदागर है, उनसे भक्ति का पट्टा लिखवा लेंगी। मन-मानिक की खिड़की खुली हुई थी, सो वो झमक-

झमक करती हुई अटारी में चढ़ गयी। पर वहाँ आगे न कोई डोर है, न रस्सी, फिर अमर लोक में कैसे जाए? खुद ही सुझाते हुए कह रहे हैं कि वहाँ सीधी ऊपर की ओर सुरति करो और गुरु के शब्द पर चढ़ जाओ और उसी पर बैठकर चलो। वहाँ आगे आध्यात्मिक गंगा बह रही है, वहाँ जाकर हंस नहाता है और उसका आवागमण मिट जाता है।

आत्मा स्वप्न रूप है

जाते भयो अण्ड स्वप्न रूप बसै अण्ड माहिं,
कर्त्ता को स्वरूप नाहीं, अण्ड को स्वरूप है।
नाद बिन्द योग स्वप्न, जीव ईश भोग स्वप्न,
भूमि आव तार निराकार स्वप्न रूप है॥
पाप पुण्य करै स्वप्न वेद और वेदान्त स्वप्न,
वाचा और अवाचा स्वप्न रूप सो अनूप है।
चंद्र सूर्य भास स्वप्न पंच में प्रपंच स्वप्न,
स्वर्ग नर्क बीच बसै सोऊ स्वप्न रूप है॥
ओहं और सोहं स्वप्न पिण्ड और ब्रह्माण्ड स्वप्न,
आत्मा परमात्मा स्वप्न रूप सो अरूप है।
जरा मृत्यु काल स्वप्न गुरु शिष्य बोध स्वप्न,
अक्षर निःअक्षर आत्मा स्वप्न रूप है॥
कहत कबीर सुन गोरख वचन मम,
स्वप्न ते परे सत्य सत्य रूप भूप है।
सोई सत्यनाम सत्यलोक बीच वासा करे,
नहीं कहूँ आवे नहीं जावे सत्यरूप है॥

—कबीरसाहिब

साहिब कह रहे हैं कि जिसने इस तीन-लोक रूपी अण्डे की रचना की, वो इसी अण्डे के बीच वास करता है। उसका कोई रूप नहीं है, पर अण्डे का स्वरूप है। वो कह रहे हैं कि शब्द भी स्वप्न है, शून्य

भी स्वप्न है, योग भी स्वप्न समान हैं; जीव भी स्वप्न है, ईश भी स्वप्न है, संसार के सब भोग भी स्वप्न हैं; भूमि पर अवतार धारण करने वाले भी स्वप्न हैं, निराकार भी स्वप्न रूप है; पाप और पुण्य भी स्वप्न है, वेद और वेदांत भी स्वप्न हैं; बोलना और मौन रहना—दोनों स्वप्न हैं, सुन्दरता भी स्वप्न है; चाँद और सूर्य का भास भी स्वप्न है, पाँच तत्व और उनकी पाँच-पाँच प्रकृतियाँ भी स्वप्न हैं, स्वर्ग और नरक में रहने वाला भी स्वप्न रूप है; ओहं और सोहं भी स्वप्न हैं, पिण्ड और ब्रह्माण्ड भी स्वप्न हैं; आत्मा -परमात्मा भी स्वप्न रूप हैं, जिनका कोई आकार नहीं है। बुढ़ापा, मृत्यु, काल आदि भी स्वप्न हैं और गुरु, शिष्य का बोध भी स्वप्न है; अक्षर, निअक्षर भी स्वप्न हैं, आत्मा भी स्वप्न रूप है। साहिब गोरखनाथ से कह रहे हैं कि मेरा बचन सुनो, स्वप्न से परे एक सत्य है, वही सत्य नाम है, जो सत्य लोक में वास करता है, वो कहीं आता-जाता नहीं और वही सत्यरूप है।

नोट : आत्मा स्वप्न रूप कैसे है ? जब शुद्ध चेतन सत्ता प्राणों को धारण करती है, तो उसे जीव कहा जाता है, जब प्राणों से निकल जाती है, तो आत्मा कहते हैं, लेकिन ऐसे में भी मन होता है, इसलिए शुद्ध चेतन सत्ता नहीं है अभी भी, इसलिए स्वप्न रूप कहा। शुद्ध रूप में चेतन सत्ता तब आती है, जब तीन लोक से परे चौथे लोक में पहुँचती है। तब इसे हंसा कहा जाता है। इसी तरह परमात्मा मन का नाम है। शुद्ध चेतन सत्ता जिसकी अंश है, उसे संतों ने 'साहिब' कहा है। वास्तव में उसका कोई नाम नहीं है, लेकिन संतों ने उसे प्यार से साहिब कहकर पुकारा है। बाकी परमात्मा, ईश्वर आदि निरंजन के नाम हैं।

ए जियरा तैं अमर लोक को

ए जियरा तैं अमर लोक को, पर्यो काल बस आई हो।

मनै सरूपी देव निरंजन, तोहि राख्यौ भरमाई हो॥

पाँच पचीस तीन को पिंजरा, तामें तो को राखै हो।

ता को बिसरि गई सुधि घर की, महिमा आपन गावै हो ॥
 निरंकार निरगुन ह्वै माया, तो को नाच नचावै हो ।
 चमर दृष्टि को कुलफी दीन्हो, चौरासी भरमावै हो ॥
 चार वेद जा की है स्वासा, ब्रह्मा अस्तुति गावै हो ।
 सो कथि ब्रह्मा जगत भुलाये, तेहि मारग सब धावै हो ॥
 जोग जाप नेम ब्रत पूजा, बहु परपंच पसारा हो ।
 जैसे बधिक ओट टाटी के, दे विस्वासे चारा हो ॥
 सतगुरु पीव जीव के रक्षक, ता के करो मिलाना हो ।
 जा से मिले परम सुख उपजै, पावो पद निर्वाणा हो ॥
 जुगन जुगन हम आय जनाई, कोई कोई हंस हमारा हो ।
 कहैं कबीर तहाँ पहुँचाऊँ, सत्त पुरुष दरबारा हो ॥

—कबीर साहिब

कह रहे हैं, हे हंसा ! तू तो अमर लोक का रहने वाला है, पर इस समय तू काल के वश में आ गया है । मन ही निरंजन देवता है, जिसने तुझे पाँच तत्वों से बने शरीर रूपी पिंजरे में डालकर भरमाया हुआ है । तुझे अपने सच्चे घर की सुधि भूल गयी है और यह काल अपनी महिमा ही संसार में गाता है । निर्गुण, निराकार तो माया है; वही तुझे नाना नाच नचा रही है; वही तुझे चौरासी में भरमा रही है । चार वेद तो मन की स्वाँसा से उत्पन्न हुए हैं, ब्रह्मा जी ने जिसकी अस्तुति संसार में गाई है । सभी उसी मार्ग पर चल रहे हैं । योग, यज्ञ, तप, पूजा, व्रत आदि सब काल ने जाल फैलाया है । सद्गुरु ही जीव की रक्षा करने वाले हैं, इसलिए उन्हीं से मिलकर अपने जीव का कल्याण करके निर्वाण पद को प्राप्त करो । साहिब कह रहे हैं कि मैं तो युग-युग से आकर जीवों को चेता रहा हूँ, पर कोई-कोई हंस ही मेरा हो पाता है और जो हंस मेरी बात को मानकर मेरा हो जाता है, उसे मैं परम-पुरुष के दरबार में पहुँचा देता हूँ ।

वा घर की सुध कोई न बतावै

वा घर की सुध कोई न बतावै, जा घर से जिवड़ा आया हो ॥
 धरती अकास पवन नहिं पानी, नहिं तब आदि माया हो ॥
 ब्रह्मा विष्णु महेस नहीं तब, जीव कहाँ से आया हो ॥
 ये मनसा माया के लोभी, बार बार पछिताया हो ॥
 लख नहिं परै नाम साहिब का, फिर फिर भटका खाया हो ॥
 कहैं कबीर सुनो भाई साधो, वह घर बिरले पाया हो ॥

—कबीरसाहिब

कह रहे हैं कि जिस स्थान से यह आत्मा (हंस) आई है, उस घर की सुधि कोई भी नहीं बताता है। तब तो यह धरती, आकाश, पवन, पानी, आद्य शक्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कुछ भी नहीं था। फिर जीव कहाँ से आया! यह जीव तो मन के वश होकर माया का लोभी बना है, इसलिए बार-बार पछिताना ही पड़ता है। कोई भी साहिब के सच्चे नाम को नहीं जानता है, जिससे बार-बार इस संसार में ही भटकना पड़ता है। कोई बिरला ही सतगुरु की शरण में आकर अपने सही घर को पाता है।

आत्मा अनूप है

जैसे कोई कहै मैं तो, सुपने में ऊँट भयो।
 जागि करि देखै वही, मानुष स्वरूप है ॥
 जैसे कोई राजा पुनि, सोवत भिखारी होई।
 आँख उघरै तौ महा, भूपन को भूप है ॥
 जैसे कोऊ भ्रमहू तें कहै, मेरो सिर कहाँ।
 भ्रम के गये ते जानै, सिर तदरूप है ॥
 तैसे ही सुन्दर यह, भ्रम करि भूल्यो आप।
 भ्रम के गये तें यह, आत्मा अनूप है ॥

—सुन्दरदास जी

सुन्दर दास जी कह रहे हैं कि जैसे कोई कहे कि मैं सपने में ऊँट

हो गया था, पर जागने पर देखा कि मनुष्य ही हूँ; जैसे कोई राजा सपने में भिखारी हो जाए, पर आँख खुलने पर पता चलता है कि वो तो राजाओं का भी राजा है; जैसे कोई भ्रम से कहे कि मेरा सिर कहाँ चला गया है ! और भ्रम से छूटकर पता चले कि सिर तो अपनी जगह पर ही है। सुन्दर दास कहते हैं कि ऐसे ही यह आत्मा भ्रम से अपने को भूल गयी है। इस भ्रम के छूटने पर पता चलता है कि आत्मा तो बड़ी ही निराली है।

मानुष जन्म अमोल

मानुष जन्म अमोल, सुकृत कौ धाड़ये ।
 सुरति कुवारी कन्या, हंसा संग व्याहिये ॥
 सतगुरु बिप्र बुलाइ के, लग्न धराड़ये ।
 बेरौ कन्या बराड़, बिलम्ब ना लाड़ये ॥
 पाँच पचीस तरुनिया, तौ मंगल गाड़ये ।
 चौरासी के दुख, बहुरि ना लाड़ये ॥
 सुरति पुरुष संग बैठि, हाथ दोउ जोरिये ।
 जम से तिनुका तोरि, भँवरि भल फेरिये ॥
 सुरति कियो है सिंगार, पिया पहँ जाड़ये ।
 जनम करम के अंक, सो तुरत मिटाड़ये ॥
 हंसा कियो है बिचार, सुरति सोँ अस कही ।
 जुग जुग कन्या कुँ वारि, एतक दिन कहँ रही ॥
 सुरति कियो है प्रनाम, पिया तुम सत कही ।
 सतगुरु कन्या कुँ वारि, एतक दिन तहँ रही ॥
 प्रेम पुरुष कै साज, अखण्ड लेखा नहीं ।
 अमृत प्याला पियै, अधर महँ झूलही ॥
 पान परवाना पाय, तौ नाम सुनावही ।
 सतगुरु कहैं कबीर, अमर सुख पावही ॥

—कबीर साहिब

कह रहे हैं कि यह मनुष्य जन्म बड़ा ही अमोलक है; इसे बेकार मत करो। इसमें बैठी सुरति रूपी कन्या कुँवारी है; इसका व्याह कराकर अमर लोक भेज दो। सद्गुरु रूपी विप्र को बुलाकर लग्न धराओ। जल्दी से कन्या का व्याह कर दो, जिससे चौरासी के दुख छूट जाएँ। युगों से यह कुँवारी रही है। पुरुष (परमात्मा) के लिए कुछ भेंट भी नहीं है इसके पास। साहिब कह रहे हैं कि जब यह नाम रूपी अमृत का पान करेगी, सद्गुरु से सार शब्द पायेगी, तभी इसका व्याह हो पायेगा और यह अमर लोक में जाकर सुख पा सकेगी।

हंसा सुरति करो चितलाई

हंसा सुरति करो चितलाई ।
 मूल नगर पहुँचे बिन हंसा, जीव परले ह्वै जाई ॥
 साखि रमैनी कथे अपारा, कथि कथि मरे गँवार ।
 राई भर अमृत को चाखे, ततछिन होय निनार ॥
 राई भर है वस्तु हमारी, अर्धराई अस्थूला ।
 लहर लहर घट भीतर बरते, सोई पुरुष निज मूला ॥
 बिरछा एक अमृत फल फरिया, ताका करो अहारा ।
 कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जग तजि ह्वै रहु न्यारा ॥

—कबीर साहिब

हे हंस! मन लगाकर सद्गुरु का ध्यान करो। अपने मूल घर अमर-लोक में पहुँचे बिना जीव प्रलय के सागर में बह जाता है। मूर्ख मनुष्य साखियाँ, रमैनियाँ आदि गा-गाकर मर रहा है, यदि सद्गुरु के सत्संग रूपी अमृत को थोड़ा-सा चख ले तो उसी समय संसार के बंधनों से अलग हो जाए। साहिब कहते हैं कि हमारी आत्मतत्त्व की वस्तु बड़ी ही सूक्ष्म है, पर भौतिक वस्तु चाहे अर्धराई हो, तो भी स्थूल ही है। जो भीतरी आध्यामिक लहरों में खोया रहता है, वो ही अपनी आत्मा में स्थित हो पाता है। भक्ति रूपी वृक्ष पर आत्म-ज्ञान रूपी अमृत फल

लगता है, उसी का आहार करो। साहिब कहते हैं कि विचार करके संसार से झंझटों से दूर ही रहो।

बिहंगम कौन दिसा उड़ि जैहौ

बिहंगम कौन दिसा उड़ि जैहौ ।
 नाम बिहूना सो पर हीना, मरमि भरमि भौ रहि हौ ॥
 गुरु निन्दक वद संत के द्रोही, निन्दै जनम गँवैहौ ।
 पर दारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥
 मद पी मति मदन तन व्यापेउ, अमृत तजि बिष खैहौ ।
 समुझहु नहिं वा दिन की बातें, पल पल घात लगैहौ ॥
 चरन कँवल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि उभि थाह न पैहौ ।
 कहँ दरिया सत्य नाम भजन बिनु, रोड़ रोड़ जनम गँवैहौ ॥

—दरिया साहिब (बिहार वाले)

कह रहे हैं, हे शरीर में रहने वाले जीव रूपी पक्षी ! नाम के बिना न जाने तुम किस देश में जाकर भटकते रहोगे ! तुम गुरु निंदा और संत से द्रोह करते हो। तुमने अपना जीवन निंदा में ही गँवा दिया। दूसरे की स्त्री में ही तुम रमे रहे। माया के मद में तुम खोए रहे और नाम रूपी अमृत को छोड़कर विषयों का विष ही पिया। तुम उस दिन की बात याद करो, जब यम तुम्हें लेने आयेगा। वो हर समय घात लगाकर बैठा हुआ है; कभी भी तुम्हें ले जा सकता है। तब तुम्हें रोना ही पड़ेगा।

हंसा चलो अगमापुर देसा

हंसा चलो अगमापुर देसा ।
 छाड़ो कपट कुटिल चतुराई, मानि लहु उपदेसा ॥
 छाड़ो काम क्रोध औ माया, छाड़ो देस कलेसा ।
 ममता मेटि चलो सुख सागर, काल गहै नहिं केसा ॥
 तीन देव पहुँचैं नाहीं तहँ, नहीं सारदा सेसा ।

कुरम बराह तहँ पार न पावैं, नहिं तहँ नारि नरेसा ॥
 गुरु गम कहो सब्द की करनी, छोड़ो मति बहुतेसा ॥
 हंसा सहज जाइ तहँ पहुँचे, गहि कबीर उपदेसा ॥

—कबीर साहिब

कह रहे हैं, हे हंस ! अमर-लोक में चलो । मेरी बात मानो और कपट, चतुराई, काम, क्रोध, माया, मोह, ममता आदि सबको छोड़कर उस सुख के सागर में चलो, जिससे काल फिर नहीं पकड़ पायेगा । वहाँ तो त्रिदेव, शारदा, गोरी, गणेश आदि भी नहीं पहुँच सकते हैं । कूर्म, बराह आदि भी वहाँ नहीं जा सकते हैं । वहाँ नर-नारी आदि कुछ भी नहीं हैं । तुम गुरु के शब्दों पर चलो और अन्य सब मत छोड़ दो, जिससे तुम्हारी आत्मा उस देश में पहुँचे ।

मुसाफिर जैहो कौनी ओर

मुसाफिर जैहो कौनी ओर ॥
 काया सहर कहर है न्यारा, दुइ फाटक घनघोर ।
 काम क्रोध जहँ मन है राजा, बसत पचीसो चोर ॥
 संसय नदी बहैं जल धारा, विषय लहर उठै जोर ।
 अब का गाफिल सोवै बौरा, इहाँ नहीं कोई तोर ॥
 उतर दिसा इक पुरुष बिदेही, उन पै करो निहोर ।
 दाया लागै तब लै जैहैं, तब पावो निज ठौर ॥
 पाछल पैँडा समुझो भाई, ह्वै रहो नाम कि ओर ।
 कहै कबीर सुनो हो साधो, नाहीं तौ पैहौ झकझोर ॥

—कबीर साहिब

कह रहे हैं, हे जीव रूपी मुसाफिर ! तुम किस दिशा में जा रहे हो ! काया रूपी नगरी में बड़ा दुख है । इसमें काम और क्रोध के दो बड़े भयानक फाटक हैं । इस नगरी का राजा मन है और इसमें पचीस प्रकृतियाँ रूपी पचीस चोर भी रहते हैं । इसमें संशय रूपी नदी बहती है,

जिसमें बड़ी भयानक लहरें उठती हैं। हे मुसाफ़िर! तुम बेख़बर होकर क्या सो रहे हो; यहाँ कोई भी तुम्हारा नहीं है। तुम नाम का सहारा पकड़ लेना अन्यथा काल तुम्हें छीनकर ले जायेगा।

चलो जहाँ देस है तोरी

घड़ा एक नीर का फूटा। पत्र एक डार से टूटा ॥
 ऐसहि नर जात जिंदगानी। अजहु नहिं चेत अभिमानी ॥
 भुलो जनि देख तन गोरा। जगत में जीवना थोरा ॥
 निकरि जब प्रान जावैगा। कोई नहिं काम आवैगा ॥
 सजन परिवार सुत दारा। सभै एक रोज होइ न्यारा ॥
 तजो मद लोभ चतुराई। रहो निरसंक जग माहीं ॥
 सदा ना जान ये देही। लगावो नाम से नेही ॥
 कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहाँ देस है तोरी ॥

—धर्मदास जी

कह रहे हैं कि जैसे पानी का घड़ा फूट जाता है, डाली से पत्ता टूटकर गिर जाता है, ऐसे ही यह जीवन भी चला जायेगा। इसलिए किसी भी बात का घमण्ड नहीं करो। जब प्राण इस शरीर से निकल जायेंगे तो कोई काम नहीं आयेगा; स्त्री, बेटा, परिवार आदि सबसे जुदा होना पड़ेगा। इसलिए इन सबका मोह छोड़ो; सच्चे नाम से प्रीत करो और उस देश (अमर लोक) में चलो, जो तुम्हारा अपना है।

इक दिन परलै होइ है हंसा

इक दिन परलै होइ है हंसा, अबहिं सम्हारो हो ॥
 ब्रह्मा विष्णु जब ना रहै, नहिं सिव कैलासा हो ॥
 चाँद सूरज जब ना रहै, नहिं धरनि अकासा हो ॥
 जोत निरंजन ना रहै, नहिं भोग भगवाना हो ॥
 सत विस्नू मन मूल है, परलय तर आई हो ॥

सोरह संख जुग ना रहै, नहिं चौदह लोका हो ॥
 अंड पिंड जब ना रहै, नहिं यह ब्रह्मण्डा हो ॥
 कबीर हंसा पुरुष मिले, मोरे और न भावै हो ॥
 कोटिन परलय टारि कै, तोहि आँच न आवै हो ॥

—कबीरसाहिब

कह रहे हैं, हे हंसा! इक दिन प्रलय हो जायेगी और कोई नहीं रहेगा। इसलिए अभी से होशियार हो जा। मुझे तो वही जीव अच्छा लगता है जो परम-पुरुष से प्रेम करके उसमें मिल जाए।

ओ मुसाफिर जाग जा

ओ मुसाफिर जाग जा, अब तो सबेरा हो गया।
 ढूँढ़ने आया किसी को, तू स्वयं ही खो गया ॥
 माँस का पुतला जो लंबा, साढ़े तीन हाथ है।
 मैं उसे कहने लगा, जो कुछ दिनों से साथ है ॥
 जन्म से पहले न था, नहिं अन्त में रह जायेगा।
 यह देखते ही देखते, इक दिन भस्म बन जायेगा ॥
 अज्ञान की निद्रा से गीतानन्द अब जो जाग जा।
 इस देह रूपी जेल से जल्दी निकलकर भाग जा ॥

—गीतानन्दजी

हे जीव रूपी मुसाफिर, अब तो जाग जा, जवानी रूपी सबेरा हो गया है। तू तो यहाँ मानव-तन पाकर प्रभु को खोजने आया था, पर तू स्वयं अपना आपा ही खो चुका है। साढ़े तीन हाथ का जो माँस का शरीर रूपी पुतला है, उसे ही अपना आपा कहने लग गया है। वो तो कुछ दिन के लिए ही तेरे साथ है। यह तो जन्म से पहले भी तेरे साथ नहीं था और अन्त में भी नहीं रह जायेगा। यह तो देखते-ही-देखते एक दिन भस्म हो जायेगा। इसलिए तू अज्ञान की नींद से जाग और इस शरीर रूपी जेल से निकलकर भाग चल।

सुरति सुहागिन जाग

सुरति सुहागिन जाग, जनम सब सोय गँवायो री॥
 नाद बिंद बिस्तार, सार कछु खोज न पायो री॥
 रही री बिषय सुख स्वाद, आदि बिन कोय खुटायो री॥
 जुगन जुगन रही भूल सूल, तब दुख सुख पायो री॥
 आवा गमन निवार, आस ने सब भटकायो री॥
 काल कला परचंड, अंड सब घेर घुमायो री॥
 रही री बिषय बिष बाद, साध कोई संग न पायो री॥
 औसर बीतो दाव, साह से पूँजी लायो री॥
 तुलसीदास बिन संत, अंत नहिं छेव छुड़ायो री॥

—तुलसी साहिब (हाथरस वाले)

सुरति को चेताते हुए कह रहे हैं, हे मरे सुरति ! तू अब जाग जा ।
 तूने सारा जन्म सोकर ही गँवा दिया है । तू विषयों में ही खो गयी है । काल
 ने तुझे भटका दिया है । तूने साधु का संग भी नहीं किया । देख, समय
 बीता जा रहा है । संत की शरण में चल, क्योंकि उनके बिना तुझे कोई
 काल से नहीं छुड़ा सकता है ।

हंसा आये लोक

अगमपुरी को ध्यान, खबर सतगुरु करी ।
 लीजे तत्त बिचार, सुरत मन में धरी॥
 सुरत निरत दोउ संग, अगम को गम कियो ।
 सबर बिवेक बिचार, छिमा चित में दियो॥
 गुरु के सबद लौ लाय, अगोचर घर कियो ।
 सबद उठै झनकार, अलख तहँ लखि लियो॥
 अलख लखो लौ लाय, डोरि आगे धरो ।
 जगमगार वह देस, केल हंसा करो॥

सतगुरु डोरी लाय, पुकारैं जीव को।
 हंसा चले सँभालि, मिलन निज पीव को॥
 मंगल कहै कबीर, सो गुरुमुख पास है।
 हंसा आये लोक, अमर घर वास है॥

कोई कोई हंस उतरिहैं

अबकी बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो॥
 आई थी वा देस से हो, भई परदेसिन नारि।
 वा मारग मोहिं भूलि गयो, बिसरि गयो निज नाम हो॥
 जुगन जुगन भरमत फिरी हो, जम के हाथ बिकाय।
 कर जोरे विनती करों हो, मिलि बिछुरन नहिं होय हो॥
 विषम नदी बिकरार है हो, मन हठ करिया धार।
 मोह मगर वा के घाट में, खायो सुर नर झारि हो॥
 सब्द जहाज कबीर के हो, सतगुरु खेवनहार।
 कोई कोई हंस उतरिहैं हो, पल में देउँ छोड़ा हो॥

—कबीरसाहिब

जीवात्मा सद्गुरु से प्रार्थना करती हुई कह रही है कि अबकी बार मेरी विनती सुनकर मुझे उबार लो। जिस अमर-लोक से मैं आई थी, वो रास्ता मुझे भूल गया और काल के हाथ में पड़कर युग-युग भटकती ही रही। इस संसार-सागर में माया की बड़ी भयानक नदी बह रही है, जिसमें मन बहाए जा रहा है। साहिब कह रहे हैं कि कबीर के पास तो शब्द रूपी जहाज है, जिसको खेने वाला सद्गुरु है। कोई-कोई हंस इस जहाज पर चढ़कर पार उतरता है। जो भी इस जहाज पर चढ़ जाता है, वो पल में छूट जाता है।

रहना है होशियार नगर में

रहना है होशियार नगर में, इक दिन चोरवा आवेगा॥
 तोप तीर तलवार न बरछी, नाहीं बंदूक चलावेगा।

आवत जात लखे नहिं कोई, घर में धूम मचावेगा ।।
 ना गढ़ तोड़े ना गढ़ फोड़े, ना वह रूप दिखावेगा ।
 नगरी से कुछ काम नहीं है, तुझे पकड़ ले जावेगा ।।
 नहिं फरियाद सुनेगा तेरी, तुझे न कोई बचावेगा ।
 लोग कुटुम्ब परिवार घनेरे, एक भी काम न आवेगा ।।
 सुख सम्पत्ति धन धाम बढ़ाई, त्याग सकल तू जावेगा ।
 ढूँढ़े पता लगे नहिं तेरा, खोजी खोज न पावेगा ।।
 है कोई ऐसा सन्त विवेकी, हरि गुण आय सुनावेगा ।
 कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, खोल किंवारी जावेगा ।।

—कबीर साहिब

हे जीव ! शरीर रूपी नगर में होशियार रहो, एक दिन यम रूपी
 चोर इसमें आयेगा । वह न तोप चलायेगा, न तीर, न तलवार, न बरछी
 और न बंदूक । उसे कोई आते-जाते देख भी नहीं पायेगा । वह शरीर रूपी
 घर में आकर उपद्रव मचायेगा । वह शरीर के किले को तोड़े-फाड़ेगा भी
 नहीं और न ही अपना रूप दिखायेगा । उसे इस शरीर रूपी नगरी से कोई
 काम नहीं है, वो तो बस तुझे पकड़कर ले जायेगा । वो तेरी कोई फरियाद
 भी नहीं सुनेगा और न कोई दूसरा ही तुझे उससे बचा पायेगा । तेरे जितने
 भी मित्र-कुटुम्बी आदि हैं, कोई एक भी तेरे काम नहीं आयेगा । सुख-
 संपत्ति, धन-धाम, मान-बढ़ाई आदि सब यहीं छोड़कर तू चला जायेगा ।
 यदि तुझे कोई ढूँढ़ने की कौशिश करेगा तो उसे पता न चल पायेगा कि
 तू कहाँ गया है । साहिब कहते हैं कि कोई विवेकी संत ही होता है, जो
 सच्चे परमात्मा का ज्ञान सुनाता है और ऐसे गुरु से ज्ञान प्राप्त करने वाला
 अपनी सुरति के भीतर के 11वें द्वार को खोल अपने सही घर चला
 जायेगा ।



पुस्तक सूची

हिन्दी में

1. परा रहस्या
2. मासिक पत्रिका सत्यकेतु
3. पावन प्रार्थनाएँ
4. सद्गुरु चालीसा
5. वार्षिक डायरी
6. सद्गुरु भक्ति
7. कहाँ से तू आया और कहाँ
तुझे जाना रे?
8. सत्संग सुधारस
9. नाम अमृत सागर
10. अमृत वाणी
11. सद्गुरु नाम जहाज़ है
12. चल हंसा सतलोक
13. कोटि नाम संसार में तिनते
मुक्ति न होय
14. मूल नाम गुप्त है, जाने बिरला
कोय
15. गुरु सुमिरै सो पार
16. तीन लोक से न्यारा
17. सेहत के लिए ज़रूरी
18. सहजे सहज पाइये
19. रोगों से छुटकारा
20. सद्गुरु महिमा
21. भक्ति के चोर
22. अनुरागसागर वाणी
23. भक्ति सागर
24. हरि सेवा युग चार है, गुरु
सेवा पल एक
25. सत्य नाम के सुमरते उबरे
पतित अनेक
26. काग पलट हंसा कर दीना
27. कस्तूरी कुण्डल बसै मृग
खोजे बन माहिं
28. गुरु पारस गुरु परस है
29. गुरु अमृत की खान
30. शीश दिये जो गुरु मिले तो
भी सस्ता जान
31. मूल सुरति
32. भृंग मता होय जिहि पासा,
सोई गुरु सत्य धर्मदासा

33. मैं कहता हूँ आँखिन देखी
34. गुरु संजीवन नाम बतावे
35. नाम बिना नर भटक मरे
36. रोगों की पहचान
37. यह संसार काल को देशा
38. न्यारी भक्ति
39. साहिब तेरी साहिबी सब
घट रही समाय
40. जाप मरे अजपा मरे अनहद
भी मर जाए
41. आयुर्वेद का कमाल रोगों के
निदान में
42. सुरति समानी नाम में
43. सबकी गठरी लाल है, कोई
नहीं कंगाल
44. निन्दक जीवे युगन युग
काम हमारा होय।
45. निराले सद्गुरु
46. कुँजड़ों की हाट में हीरे का
क्या मोल
47. जीवड़ा तू तो अमर लोक का
पड़ा काल बस आई हो
48. मुझे है काम 'सद्गुरु से
जगत रूठे तो रूठन दे'
49. जेहि खोजत कल्पो भये
घटहि माहिं सो मूर
50. आत्म ज्ञान बिना नर भटके
51. बिन सतगुरु बाँचे नहीं
कोटिन करे उपाय
52. अँधी सुरति नाम बिन जानो
53. सत्यनाम निज औषधि
सद्गुरु दर्ई बताय
54. सेहत संजीवनी
55. भक्ति दान गुरु दीजिए
56. मन पर जो सवार है ऐसा
ऐसा विरला कोई
57. सत्यनाम है सार बूझौ सन्त
विवेक करि
58. रोग निवारक
59. मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी
60. "तेरा बैरी कोई नहीं
तेरा बैरी मन"
61. सुरति का खेल सारा है
62. सार शब्द निहअक्षर सारा
63. करूँ जगत से न्यार
64. बिन सत्संग विवेक न होई
65. सत्य नाम को जनि कर दूजा
देई बहा
66. सुरत कमल सद्गुरु स्थाना
67. मनहिं निरंजन सबै नचाए
68. सत्यपुरुष को जानसी
तिसका सतगुरु नाम
69. आपा पौ आपहि बँध्यो

दोहावली

कबीर चंदन पर जला, तीतर बैठा माहिं ।

हम तो दाक्षत पंख बिन, तुम दाक्षत हो काहिं ॥

शरीर रूपी जलते हुए चंदन के पेड़ पर शांत आत्मा रूपी तीतर आकर बैठ गया और वो भी जलने लगा। चंदन के पेड़ ने कहा कि मेरे तो पंख नहीं हैं, इसलिए जल रहा हूँ, पर तुम तो उड़ सकते हो, फिर तुम क्यों जल रहे हो? विषय-विकारों की ज्वाला में यह शरीर जल रहा है, पर आत्मा बेकार में ही अज्ञानवश इस ज्वाला में जलने के लिए शरीर में आकर बैठ रहा है।

हंसा तू सुवर्ण वर्ण, क्या वर्णों में तोहिं ।

तरिवर पाय पहेलिहो, तबै सराहीं तोहिं ॥

हे हंसा! तू बड़ा ही प्यारा है, मैं तेरा क्या वर्णन करूँ! पर इस मानव-तन को पाकर तू अपने रहस्य को समझ, तभी तेरी सराहना करूँगा।

हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल ।

रंग कुरंगे रंगिया, किया अउर लगवार ॥

हे चेतन हंस! तू तो बड़ा ही शक्तिशाली था। पर तू अपनी चाल को भूल गया है। माया के रंग में रँगकर तू दीन बन गया है और दूसरों को अपना मालिक मान रखा है।

हंसा सरवर तजि चले, देही परि गौ सुन्न ।

कहैं कबीर पुकारि के, तेही दर तेही थून ॥

जीव शरीर को त्यागकर चल पड़ता है तो शरीर खाली हो जाता है। पर फिर यह जीव बार-बार गर्भ में प्रवेश करता है।

जाग्रित रूपी जीउ है, सबद सोहागा सेत ।

जरद बुंद जल कुकूही, कहैं कबीर कोई देख ॥

जीव चेतन है और सद्गुरु का शब्द रूपी सुहागा पाकर यह परम चेतन हो जाता है। पर कोई देखो, यह तो रज-वीर्य के पानी के बुदबुदे समान शरीर में ही मस्त हो रहा है।